योग सिद्धान्तों एवं शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

वर्ष : 39 - अंक : 7
अक्टूबर, 2006

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सँवाई-283202 (आगरा) उ.प्र.

जन्म दिवस की खुशी

राजेश कुमार श्रीवास्तव (राजू)

जन्म दिवस की खुशी मनायें, गायें आपका नाम
भक्तों के प्रतिपालक गुरुवर, मेरा कोटि प्रणाम

माता धरति गोद खिलावें, देवीराम पिता सुख पावें
करें देव फूलों की वर्षा, तीन लोक आनन्द मनावें
ग्राम अलूपुरवासी गावें, आयो श्याम-श्याम
भक्तों के प्रतिपालक......

एक वृद्ध साधु ने आकर, बोले कृष्ण कन्हैया
ये जो बालक खेल रहा है, तेरा पार लगैया
सकल मनोरथ पूरण करते, हैं ये पूरणकाम
भक्तों के प्रतिपालक........

चरणों में वह झुका आपने, शक्तिपात बरसाया
रोटी-छाछ लाये माता से, प्रेम से उसे खिलाया
नन्हें से गुरुदेव ने उसको, दिया प्रभु का धाम
भक्तों के प्रतिपालक.....

बचपन दारुण दुख में बीता, अतिशय कष्ट उठाया
करी तपस्या जंगल-जंगल, चैन न मन को आया
गुरु पाये प्रभुरामलाल जी, रामों के 'श्रीराम'
भक्तों के प्रतिपालक.....

साधक जीवन का हर क्षण-क्षण, गुरु सेवा में लगाया
किया प्रसन्न प्रभु का हृदय, पूर्ण योग था पाया
सौंप दिया सर्वस्व प्रभु को, योग की पकड़ी लगाम
भक्तों के प्रतिपालक.......

धाम सांवाई सिद्धगुफा को, योग का केन्द्र बनाया
घर-घर जाकर निज बच्चों का, जीवन धन्य बनाया
ग्राम सांवाई बना दिया, पृथ्वी पर बैकुण्ठ धाम
भक्तों के प्रतिपालक प्रभुजी.........

।। श्री चन्द्रमोहन गुरवे नमः।।

परमपूज्य गुरुदेव

योगयोगेश्वर श्री चन्द्रमोहनजी महाराज

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवांई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 39 अंक 7	ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम् मर्त्यो मृत्योर्मुख विचरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः। तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्, कल्याणं भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।	अक्टूबर 2006

नौमीड्य तेऽभ्रवपुषे तडिदम्बराय
गुंजावतंसपरिपिच्छलसन्मुखाय।
वन्यस्रजे कवलवेत्रविषाणवेणु-
लक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपांगजाय।।

(श्रीमद्भा० १० ।१४ ।१)

अर्थात्—हे प्रभो ! एकमात्र आप ही स्तुति करने योग्य हैं। मैं आपके चरणों में नमस्कार करता हूँ। आपका यह शरीर वर्षाकालीन मेघ के समान श्यामल है, इस पर स्थिर बिजली के समान झिलमिल-झिलमिल करता हुआ पीताम्बर शोभा पाता है, आपके गले में घुँघची की माला, कानों में मकराकृति कुंडल तथा सिर पर मोर पंखों का मुकुट है, इन सबकी कान्ति से आपके मुख पर अनोखी छटा छिटक रही है। वक्षःस्थल पर लटकती हुई वनमाला और नन्ही-सी हथेली पर दही-भात का कौर। बगल में बेंत और सिंगी तथा कमर की फेंट में आपकी पहचान बताने वाली बाँसुरी शोभा पा रही है। आपके कमल-से सुकोमल परम सुकुमार चरण और यह गोपाल-बालक का सुमधुर वेश। मैं और कुछ नहीं जानता; बस, मैं तो इन्हीं चरणों पर निछावर हूँ।

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक :
डा. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष
एवं गुरु भाई-बहिन

इस अंक में ...

1. विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज 3
2. सम्पादकीय 9
3. रुद्राक्ष के उपयोग से संवारें अपना जीवन – पं० संदीप ज्योतिषी 13
4. श्रद्धा वीर्य स्मृति समाधि प्रज्ञापूर्वक इतरेषाम – डा० विजय सिंह 15
5. अध्यात्म-सिद्धि का गणितीय सूत्र (२) – डा० ऋषिराम शर्मा 19
6. एक योगी की महायात्रा – वेदव्रत द्विवेदी (उमापुर) 23
7. सांवाई आले, भाग जगा दे..... – जगदीश राय बंसल 'अधम', (गोहाना) 25
8. गुरुदेव के प्रति शिष्य के समर्पित भाव – कु० रचना शर्मा, (गंगापुर सिटी) 26
9. उपासना – डा० सुरेन्द्र प्रताप सिंह, हमीरपुर (उ०प्र०) 30
10. गुरुदेव के संस्मरण – अमित मिश्र 31
11. यथार्थ प्रेम में गुरु कृपा – राजेश कुमार सिंह, रोहुआ (बलिया) 34
12. गजल – भूपेन्द्र 'अंकुश', जलेसर 36
13. द्वादश निवेदन – त्रिभुवन नाथ मिश्र, लखनऊ 37
14. गोरखपुर में योग सम्मेलन – प्रो० रुद्रदत्त द्विवेदी (गोरखपुर) 39

एक प्रति	: रु.	10.00
वार्षिक शुल्क	: रु.	110.00
द्विवार्षिक	: रु.	200.00
आजीवन	: रु.	825.00

विशेष लेख

प्रणव-जप एवं अन्तराय निवृत्ति

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

हमने इससे पहले अपने लेख में एकाक्षर प्रणव की महिमा को शास्त्रोक्त समझाने का प्रयत्न किया था और यह भी समझाया गया था कि ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिकों के जितने नाम हैं वे सब-के-सब प्रणवात्मक हैं। उनके जपने से भी मनुष्य ओंकार को प्राप्त करता है। सोऽहं के जाप करने से भी आत्मत्वेन प्रणव की प्राप्ति का ही विधान है। हंस विद्या अजपा गायत्री कहलाती है। उसके लिए उपनिषदों का वचन है :-

हंस-हंस अमुं मन्त्रं, जीवो जपति सर्वदा

अर्थात् हंस हंस इस मन्त्र को जीव हर समय जपता रहता है। गुरुदेव के द्वारा केवल मात्र उसका बोध कराया जाया करता है। उपनिषद् का वचन है कि-

अनया सदृशी विद्या, अनया सदृशो जपः।
अनया सदृशं पुण्यं, न भूतो न भविष्यति।।

अर्थात् इस अजपा गायत्री के समान कोई विद्या, न कोई जप और न कोई पुण्य था और न होगा।

अजपा नाम गायत्री, योगिनां मोक्षदा सदा।

अर्थात् यह अजपा-गायत्री योगियों को मोक्ष देने वाली है। अतः अजपा के द्वारा भी आत्म-बल की प्राप्ति होती है और स्वरूप स्थिति का यह मूल साधन है। हमारे इससे पिछले लेख में अन्तराय निवृत्ति का जिक्र आ चुका है। योगदर्शन कहता है-

ततः प्रत्यक्चेतनाधि, गमोप्यन्तरायः।

अर्थात् प्रणव के जाप करने पर मनुष्य को प्रत्येक चेतन की प्राप्ति और उसके अन्तराय की निवृत्ति स्वभाव से ही हो जाती है। भगवान पतंजलिदेव ने योग-दर्शन में अन्तरायों का स्वरूप इस प्रकार बतलाया है-

व्याधिस्त्यान संशय प्रमादालस्याविरति भ्रान्तिदर्शनालब्ध भूमिकत्वा नवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः।

इस सूत्र पर व्यास भाष्य इस प्रकार है-

नवान्तरायाश्चित्तस्य विक्षेपाः सहैते चित्तवृत्तिभिर्भवन्त्येतेषामभावे न भवन्ति

पूर्वोक्ताश्चित्त वृत्तयः, व्याधि=धातु रसकरणवैषम्यं, स्त्यानम् अकर्मण्यता-चित्तस्य, संशय उभय कोटिस्पृग् विज्ञानं स्यादिदमेवं नैवं स्यादिति, प्रमादः=समाधिसाधनानामभावनम्, आलस्यम्=कायस्य चित्तस्य च गुरुत्वादप्रवृत्ति, अविरतिः=चित्तस्य विषयसंप्रयोगात् मागर्द्धः भ्रान्तिदर्शनम् = विपर्य्ययज्ञानम्, अलब्धभूमिकत्वम् समाधि भूमेरलाभः अनवस्थितत्वं=यल्लब्धाया भूमौ चित्तस्या प्रतिष्ठा, समाधि प्रतिलम्भे हि तदवस्थितं स्याद् इत्येते चित्तविक्षेपा नव योगमलाः, योग प्रतिपक्षा, योगान्तराया इत्यभिधीयन्ते।

अर्थात् व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्ध, भूमिकत्व और अनवस्थितत्व आदि–आदि योग के नौ अन्तराय है।

उनकी व्याख्या इस प्रकार समझनी चाहिए। ये सब–के–सब अन्तराय–चित्त में विक्षेप करने वाले है। चित्त–वृत्तियों के रहते हुए ही अन्तराय हुआ करते हैं। उनमें से सबसे प्रथम पतंजलिदेव ने व्याधि रूप अन्तराय को बतलाया, जो बड़ा प्रबल अन्तराय है, और मनुष्य को परमार्थ से बिल्कुल च्युत कर दिया करता है। व्याधि शब्द का अर्थ है कि चर्म, रुधिर, मांस, नस आदि धातु खान–पानादि का रस, मन और इन्द्रियों की विषमता से उत्पन्न हुए यकृत प्लीहादि ज्वर आदि व्याधि कहलाते है। व्याधि धातु आदि की विषमता से पैदा हुआ करती है। व्याधि एक प्रकार का अन्तराय है जिसके पैदा हो जाने के बाद अच्छे–से–अच्छा चलने वाला साधक भी विचलित होकर पतन की ओर चला जाता है। इसलिए साधक के लिए परमावश्यक है कि वह स्त्यान ही पैदा न होने दे और इसके पैदा न होने देने के लिए आवश्यक साधन करता रहे।

दूसरा स्थान स्त्यान का है। व्याधि में ग्रसित हुआ प्राणी इतना दीन–हीन हो जाता है जिसके फलस्वरूप उसका चित्त बिल्कुल अकर्मण्य बन करके लापरवाही में रहने लगता है यही स्त्यान रूप अन्तराय है। इसके बाद तीसरा अन्तराय, संशय, नाम का है। संशय शब्द का अर्थ है उभय कोटि स्पृज्ञान अर्थात् मन में हर समय संशय बनाये रहना। यह बात ठीक है या गलत है, इस प्रकार से कभी ठीक और कभी गलत ऐसी भावना उभय कोटि स्पृज्ञान है। इसके बाद चौथा अन्तराय प्रमाद है, अर्थात् समाधि के साधनों में अप्रवृत्त रहना संलग्नता का न होना ही प्रमाद का रूप है। इसके बाद पांचवां आलस्य है, आलस्य का अर्थ है कि 'शरीरस्य गुरुत्वात' अर्थात् वात कफादि के कारण और मन में भारीपन आ जाना यह आलस्य नाम का अन्तराय है। इसके बाद छठा अन्तराय अविरति है अर्थात् वैराग्य का प्रभाव वासनिक भोगों को भोगते–भोगते बुद्धि–वृत्ति इतनी मलीन हो जाती है कि जिससे आत्मा भी अपने–आप को वासनारूप ही देखने लगता है, इसी का नाम अविरति है। इसके बाद सातवां अन्तराय भ्रान्ति–दर्शन है अर्थात् भ्रान्ति शब्द का अर्थ है अविद्यादि के कारण

मन में विपरीत ज्ञान का होना यही भ्रांति–दर्शन कहलाता है। भगवान पतंजलिदेव ने विपर्यय का अर्थ लिखा है–

विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूप प्रतिष्ठम्।

अर्थात् किसी वस्तु में भ्रांति–दर्शन नामक जो मिथ्या ज्ञान कहलाता है उसी को भ्रान्ति–दर्शन कहते हैं। जैसे नेत्रों में किसी प्रकार का रोग हो जाने पर किसी वस्तु का दो रूपों में प्रतीत होना इसी का नाम भ्रान्ति–दर्शन है। इसके बाद आठवाँ अन्तराय अलब्ध भूमिकत्व है, इसका अर्थ है समाधि भूमेरलाभः, अर्थात् समाधि स्थिति का प्रयत्न करने पर भी प्राप्त ही न होना यह अलब्ध भूमिकत्व नाम का अन्तराय है। जैसे कोई स्त्री–पुरुष गुरुदेव जी की आज्ञा मानकर प्रति दिन गीता पाठ में और दो घण्टे ध्यानाभ्यास भी करे कदाचित् बहुत प्रयत्न करने के बाद थोड़ी बहुत स्थिति बन भी जाये फिर वह कायम न रहे इसी का नाम अनवस्थितत्व नाम का नौवां अन्तराय है। यह नौ अन्तराय भगवान पतंजलिदेव ने योग–दर्शन समाधि–पाद के तीसवें सूत्र में बतलाये हैं। इनके साथ–साथ कुछ थोड़े से और विक्षेप पैदा हो जाया करते हैं।

दुःख दौर्मनस्यांगमेजयत्वश्वास प्रश्वासा विक्षेप सहभुवः।

इस सूत्र पर व्यास–भाष्य इस प्रकार है–

दुःखमाध्यात्मिकम्, आधिभौतिकम्, आधिदैविकम् च, येनाभि हताः प्राणिनस्तदुपघाताय प्रयतन्ते तद् दुःखम्, दौर्मनस्यम्=इच्छाभिघाताच्चेतसः क्षोभः यदंगान्येजयति=कम्पयति तद् अंगमेजयत्वम्, प्राणी यद्बाह्य वायुमाचामतिस श्वासः, यत् कौष्ठ्यं वायुं निस्सारयति स प्रश्वासः, एते विक्षेप सहभुवो=विक्षिप्त चित्तस्यैते भवन्ति, समाहित चित्तस्यैते न भवन्ति।

अर्थात् आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक दुःख कहलाते हैं। जिनसे पीड़ित हुआ प्राणी अपने आप को दुःख से छुड़ाने के प्रयत्न में लगा रहता है। यह भी अन्तरायों के साथ पैदा होने वाला एक छोटा सा अन्तराय ही है। इसी प्रकार 'दौर्मनस्यम्' अर्थात् 'इच्छाभिघातासच्चेतसः क्षोभ' अर्थात् बहुत प्रयत्न कर लेने पर भी वस्तु की प्राप्ति न होने पर मन में जो क्षोभ होता है उसी का नाम दौर्मनस्य है, और साधन काल में शरीर के अंगों का कांपना, अंगों के बार–बार कांपने पर मन का स्थिर न होना यह अंगमेजयित्व नाम का एक छोटा सा अन्तराय ही है। ठीक इसी प्रकार श्वास, प्रश्वास, नासिका रन्ध्रों से बाहर की वायु अन्दर खींचना श्वास कहलाता है और अन्दर की श्वास बाहर निकालना प्रश्वास कहलाता है। यह भी अन्तरायों के समान पांच छोटे अन्तराय ही हैं। इन सबकी निवृत्ति के लिए शास्त्रोक्त उपाय अभ्यास और वैराग्य दो ही बताये गये हैं। किन्तु भगवान

पतंजलिदेव यह आदेश देते हैं—

तत्प्रतिषेधार्थ मेकतत्त्वाभ्यासः।

इस सूत्र पर व्यास भाष्य इस प्रकार है—

विक्षेप प्रतिषेधार्थ मेकतत्त्वावलम्बनम् चित्तमभ्यसेत्, यस्य तु प्रत्यर्थनियतं प्रत्ययमात्र क्षणिकञ्च चित्तं, तस्य सर्व मेव चित्तमेकाग्रं नास्त्येव विक्षिप्तं, यदि पुनरिदं सर्वतः प्रत्याहृत्यैकस्मिन्नर्थे समाधीयते तदा भवत्येकाग्रमिति, अतो न प्रत्यर्थं नियतम्, योऽपि सदृश प्रत्यय प्रवाहेण चित्तमेकाग्रं मन्यते तस्य यद्येकाग्रता प्रवाहचित्तस्य धर्मस्तदैकं नास्ति प्रवाहचित्तंक्षणिकत्वाद्, अथ प्रवाहांशस्यैव प्रत्ययस्य धर्मः स सर्वः सदृश्य प्रत्यय प्रवाही वा विसदृश प्रत्यय प्रवाही वा प्रत्यर्थनियतत्वादेकाग्र एवेति विक्षिप्तचित्तानुपपत्तिः, तस्मादेकमनेकार्थमवस्थि तम् चित्तमिति, यदि च चित्तेनैकेनानन्विताः स्वभाव भिन्नाः प्रत्ययाः जायेरन् अथ कथमन्य प्रत्यय दृष्टस्यान्यः स्मर्ता भवेद् अन्य प्रत्ययोप चितस्य च कर्माशयस्यान्यः प्रत्यय उपभोक्ता भवेत्।

अर्थात् इन सब प्रकार के अन्तरायों की निवृत्ति के लिए एक ही पर तत्व का अभ्यास करना चाहिए। ऐसा आदेश भगवान पतंजलिदेव ने दिया और यह अभ्यास तभी हो सकता है कि उस उसमें मन एकाग्र करके किया जाय। इस बात को सुन करके किसी नास्तिक के मन में प्रश्न उठता है कि चित्त क्षणिक है जो चित्त इस समय किसी अर्थ में लगा हुआ है वह उसमें एकाग्र है ही उसके बाद दूसरा प्रवाह आयेगा। दूसरी वृत्ति पैदा होगी तब उसमें दूसरा चित्त एकाग्र हो जायेगा या यूँ कहा जाय कि एकाग्रता प्रवाहिक चित्त का धर्म है जो वृत्ति जिस समय हुई चित्त की एकाग्रता का उदय हो गया जब दूसरा प्रवाह आयेगा तब दूसरी वृत्ति एकाग्र हो जायेगी। इस प्रकार उस नास्तिक को चित्त का क्षणिक मानना या प्रवाहिक चित्त का आंशिक एकाग्र होना दोनों ही असंगत बात है। सिद्धान्त की बात यही है कि एक ही चित्त अनेक अर्थों में अवस्थित है अर्थ अनेक हैं उनका प्रतीता चित्त एक ही है यदि चित्त को क्षणिक मान लिया जाये या नास्तिक के मतानुसार एकाग्रता प्रवाहिक चित्त का धर्म मान लिया जाय तो यह बात बहुत ही गलत एवं असंगत हो जायेगी। क्योंकि एकाग्रता क्षणिक चित्त का धर्म माना जाय तो जो चित्त क्षण भर पहले था वह अब नहीं है। क्षण भर पहले वाले चित्त में जो एकाग्रता आई थी उसका ज्ञान इस समय के चित्त को नहीं होना चाहिए। और इसी प्रकार से एकाग्रता को प्रवाहिक चित्त का ज्ञान माना जाये तो भी ऐसी ही बात बनती है। जो चित्त क्षण भर पहले प्रवाह में था वह इस समय प्रवाह गति से बहुत आगे निकल गया। उसके एकाग्रता के क्षण भी उसी प्रवाह के साथ चले गये। उनका ज्ञान इस समय के प्रवाहिक चित्त को नहीं होना चाहिए। अतः

चित्त न क्षणिक है और न एकाग्रता प्रवाहिक चित्त धर्म ही है। अतः एक ही चित्त अनेक अर्थों में अवस्थित है। इसी कारण से वही एकाग्र होता है। चित्त की एकाग्रता से ही अन्तरायों की निवृत्ति के लिए एक तत्व का अभ्यास किया जा सकता है रही बात इतनी कि भगवान् पतंजलिदेव ने–**तत्प्रतिषेधार्थ मेकतत्वाभ्यासः** कह करके एक तत्व की ओर संकेत किया है। वह एक तत्व क्या है, यह विचारणीय बात रह जाती है। इसके लिए टीकाकारों ने विशेषतः महाराज भोज ने अपनी भोजवृत्ति में स्पष्ट लिखा है :–

तेषां विक्षेपानां प्रतिषेधार्थमेकस्मिन कस्मिश्चिदभिमते तत्वेऽभ्यासश्चेतसः पुनः पुनर्निवेशनं कार्यः। यद्बलात् प्रत्युदितायामेकाग्रतायाम् विक्षेपाः प्रशममुपयान्ति।

अर्थात् अन्तरायों की निवृत्ति के लिए किसी अभिमत एक तत्व में चित्त को एकाग्र करे। उसमें एकाग्र हुआ चित्त अन्तरायों की निवृत्ति के लिए सबल हो जायेगा। इस भाष्य से यह संकेत मिलता है कि साधक किसी भी अभ्यास स्थल को एक तत्व रूप से अपना लक्ष्य बना करके चित को एकाग्र करना आरम्भ करे, तो चित्त अवश्य एकाग्र भी हो जायेगा एवं विक्षेप निवृत्ति भी हो जायेगी। किन्तु महर्षि का मानस अभिप्राय क्या है यह दूसरे प्रकरण से बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है। भगवान पतंजलिदेव ने योग–दर्शन के समाधि–पाद में ईश्वर का लक्षण लिखते हुए स्पष्ट निर्देश किया है कि ईश्वर परम गुरु है उसका बोधक नाम ओ३म है। इस ओ३म का जप करना चाहिए और उसके अर्थ का ध्यान करना चाहिए, प्रणव का अर्थ क्या है यह हम पिछले लेख में भली प्रकार कह चुके हैं। प्रणव ब्रह्मा विष्णु शिवादि की त्रिमूर्ति प्रतीत परा सत्ता है। या ब्रह्मा विष्णु शिवादि के अन्दर व्याप्त रहने वाली परा सत्ता है। इसलिए त्रिमूर्ति में से प्रणव का जाप करते हुए निर्गुण शुद्ध चैतन्य अथवा चैतन्याधिष्ठित ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिक की किसी भी आकृति का प्रणवार्थेन ध्यान किया जा सकता है। इस बात को स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ने अपने मुखारबिन्द से स्वीकार किया है कि–

ॐ इत्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्।।

अर्थात् 'ॐ' इस एकाक्षर का स्मरण करता हुआ और मेरा ध्यान करता हुआ जो व्यक्ति शरीर छोड़ता है सः परमां गतिं याति। वह परम गति को पा जाता है। इसलिए भगवान पतंजलिदेव ने प्रणव के जाप का एवं प्रणवाभिधेय के ध्यान का निर्देश किया है और उसका फल बताते हुए उल्लेख किया है–

ततः प्रत्यक् चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च।

अर्थात् प्रणव का जाप करने से एवं प्रणवाभिधेय का ध्यान करने से उस प्रत्यक् चेतन की प्राप्ति होती है। एवं अन्तरायों की निवृत्ति हो जाया करती है। इसी प्रकार का निर्देश

हमारे पूर्वजों ने गुरुदेव के ध्यान करने के फलस्वरूप बतलाया है। श्री गुरुदेव भी प्रणव ही हैं। हमारे शास्त्रों का कथन है कि--

गुर्रुब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुः साक्षान्महेश्वरः।
गुरुरेकं परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।।

अर्थात् श्री गुरुदेव ब्रह्मा विष्णु शिवात्मक एवं स्वयं परब्रह्म स्वरूप हैं। इसलिए हमारे पूर्वजों ने 'नास्तितत्वं गुरोःपरं' कह करके 'सद्गुरु' को ही परम तत्व बतलाया है। और गुरु शब्द की अभिव्यक्ति के लिए यह भी लिखा है कि-

यत्रावच्छेदनार्थेन कालोनोपावर्त्तते स गुरुः।

अर्थात् काल जिसकी हद को नाप नहीं सकता वह ही परा सत्ता सद्गुरु सत्ता है उसी का नाम एक तत्व है। उस पर तत्व का चिन्तन करना ही एकतत्वाभ्यास है और उसका चिन्तन करने से प्रत्येक चेतन की प्राप्ति एवं अन्तराय निवृत्ति अवश्य होगी ही। ऐसे योगी के चित्त प्रासादन का एक और उपाय भगवान पतंजलिदेव ने लिखा है जिसका पालन प्रत्येक साधक को करना चाहिए। उससे आह्लादित चित्त हो करके हर समय एकाग्र सा ही रहता है। श्री पतंजलिदेव ने लिखा है कि--

मैत्री करुणा मुदितोपेक्षाणां सुख दुःख पुण्या-पुण्य विषयाणाम् भावनातश्चित्त प्रसादनम् अर्थात् सर्व प्राणिषु सुख संभोगापन्नेषु मैत्री भावयेत्, दुःखितेषु करुणां, पुण्यात्मकेषु मुदिताम्, अपुण्यात्मकेषूपेक्षाम् एवमस्य भावयतः शुक्लो धर्म उपजायते, ततश्च चित्तं प्रसीदति प्रसन्न मेकाग्रं स्थिति पदं लभते।

अर्थात सुख-भोग सम्पन्न प्राणियों के अन्दर मैत्री की भावना करनी चाहिए और दुःखित लोगों पर दया की भावना करे। और पुण्यात्माओं को देखकर हर्षित होता रहे। और पापात्माओं को देखकर मन में उपेक्षा को धारण करें। इस प्रकार करने से चित्त तेजस बन जाता है उसमें शुक्ल धर्मों का उदय हो जाता है। प्रसन्न रहना सीख जाता है। और इसी प्रसन्नता और आह्लाद के स्वरूप एकाग्रता प्राप्त कर लेता है और चित्त के एकाग्र हो जाने पर सभी अन्तरायों की निवृत्ति हो जाती है। यह देखने में आया है कि जो साधक अभ्यासशील बने रहते हैं उनके अन्तरायों की निवृत्ति स्वतः ही होती चली जाती है। अतः प्रत्येक साधक को चाहिए कि वह अपने अभ्यास में संलग्न रहे, अपना अभ्यास करे। अपने गुरु-मन्त्र का जाप करे, इष्टदेव का ध्यान करे ऐसा करने से यह देखेगा कि उसको थोड़े से ही समय में पूर्ण सुख की प्राप्ति हो रही है।

***

सद्गुरुदेव भगवान् का प्राकट्य दिवस-विजय दशमी

आचार्य (डा०) दासलाल ब्रह्मचारी

विजयदशमी का पावन पर्व हिन्दू समाज के लिये परमोल्लास का दिन है। सौभाग्य से इसी दिन इस पृथ्वी पर एक महापुरुष का अवतरण हुआ जिन्होंने सद्गुरु के रूप में विद्यमान रहकर बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में योग समाज एवं योग जिज्ञासुओं को योग का जो अमर ज्ञान दिया उसे कभी भुलाया नहीं जा सकता। उन्होंने जन्म–जन्मान्तर से भटकते हुये अपने संस्कारी बच्चों को योग का अमर पथ दिखा दिया जिस पर चलकर जीव–ब्रह्मत्व को पाकर मोक्ष का अधिकारी बन जाया करता है। इन्हीं करुणा वरुणालय वात्सल्यमूर्ति का नाम है योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज। आप योग योगेश्वर महाप्रभु रामलाल जी महाराज के अन्यतम शिष्यों में से एक हुये हैं। सन्तों व योगियों ने अनादिकाल से ही 'सद्गुरु' तत्व के महत्त्व को समझा है और उनकी महिमा का गुणगान किया है। कबीर जैसे निर्गुणवादी योगी भी सद्गुरु महिमा का गुणगान करते नहीं अघाते। तभी तो वे कह उठते हैं :–

कबीर ऐसा तो सद्गुरु मिला, जासो रहिया लाग।
सब जग तो शीतल भया, मिटी अपनी आग।।

वस्तुत: जीवन में सद्गुरु के मिल जाने पर सारा क्लेश नष्ट हो जाता है। सारी कामनायें पूर्ण हो जाती हैं। ग्रीष्म ऋतु की तीव्र गर्मी से संतप्त भूमि को वर्षा जिस प्रकार से तृप्त कर देती है उसी तरह से सद्गुरु के मिल जाने पर सब प्रकार के दुःखों से मुक्त होकर जीव आनन्दित हो जाता है। सद्गुरु की शरण मिल जाने पर जो शिष्य आज्ञा को नहीं मानता, जिसकी बुद्धि सद्गुरु की बात नहीं सुनती वह तो शूकर की तरह उघारे गात गन्दी नालियों में विष्ठा के ढेर में पड़ा रहता है। सन्त तुकाराम इस विषय में कहते हैं–

"यदि तुम्हें गुरु चरणों में श्रद्धा है, गुरु चरणों में गहरी भावना है यदि तुम गुरु की स्थिति को आत्मसात् कर सकते हो तो फिर तुम्हें गुरु को ढूंढने की जरूरत नहीं, प्रभु तुम्हें ढूंढता फिरेगा, अतः गुरु का ध्यान करो।"

पूर्ण सद्गुरु मिलने पर ही जीवन को पूर्णत्व मिलता है। गुरु शिष्य का सम्बन्ध जगत में अलौकिक सम्बन्ध है। गुरु ही शिष्य को दिव्य दृष्टि देते हैं। 'शिष्यते शाधि मां त्वां प्रपन्नम्' अर्जुन महाभारत के मैदान में प्रार्थना करता है "मैं आपका शिष्य हूँ। मुझे आप उपदेश दीजिये। मुझे कर्तव्य का बोध कराइये। मेरा अज्ञान, भ्रम एवं मोह दूर कीजिये।"

इस प्रकार से विनीत भाव से शरणागत हुये अर्जुन से भगवान कहते हैं– दिव्यम् ददामि ते चक्षु पश्य मे योगमैश्वरम् मैं तुम्हें दिव्य चक्षु देता हूँ उससे तुम मेरे योगैश्वर्य की व्यापकता को देख सकोगे। सद्गुरु, शिष्य के अन्दर दैवी सम्पदा को विकसित करते रहते हैं। जिस समय शिष्य पूर्णरूप से दैव सम्पदा से आप्लावित होता है तब वह गुरु की दिव्यता से ओत प्रोत होने लगता है। दैवी सम्पदा के प्रकट व विकसित हो जाने पर शिष्य मुक्ति भाजन बनता है। सद्गुरु के मन में हमेशा शिष्य के कल्याण की भावना रहती है इसीलिये गुरुदेव शिष्य के छोटे–छोटे गुणों पर ही प्रसन्न होकर अध्यात्म सम्पदा लुटा देते हैं। सिद्ध गुरु की अपने शिष्य पर जन्म–जन्मान्तर तक दृष्टि बनी रहती है। उसे कल्याण के मूल स्रोत व मुक्ति देने को कृत संकल्प रहते हैं।

अपने गुरुदेव भगवान का प्राकट्य हरियाणा प्रान्त में गाँव अलुपुर जिला पानीपत में पुण्य श्लोक पंडित देवीराम जी के घर हुआ। पूज्यपिता जी व चाचा जी कट्टर आर्य समाजी थे। किन्तु ये जन्मजा सिद्ध हैं। शैशवकाल में ही भगवान कृष्ण चन्द के साथ खेलते तथा विभिन्न क्रीडायें किया करते थे। भगवान् से आपका तादात्मय स्थापित था। हर समय अलौकिक चरित्र देखने को मिला। जाग्रत में, स्वप्न में हर समय प्रकाश पुञ्ज से अपने को ओत–प्रोत देखते थे। अपनी माता चन्द्री देवी को अपने अनुभव सुनाया करते थे। थोड़ा बड़ा होने पर संस्कृत अध्ययन के लिये पिताश्री ने इन्हें लाहौर में आचार्य विश्वबन्धु जी के विद्यालय में छोड़ दिया।

तीन चार वर्ष तक विद्याध्ययन करते रहे। किन्तु उनका मन बार–बार श्री वृन्दावन धाम के दर्शन एवं भगवान् की लीला स्थलों को देखने की इच्छा से व्याकुल होने लगा। एक दिन विद्यालय छोड़ दिया और श्री धाम वृन्दावन आ गये। कई महीनों तक श्री वृन्दावन वास किया। पिताश्री के आदेश से पुनः विद्याध्ययन के लिये अमृतसर चले गये। वहाँ अध्ययन काल में ही एक गाँव में तीव्र तपश्चर्या करते हुये अनुष्ठान किया। उसी काल में स्वप्न में अपने गुरुदेव आनन्दकन्द योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के दिव्य दर्शन हुये। कुछ ही दिनों में इन्हें गुरुदेव का पता ठिकाना मिल गया। उन दिनों श्री महाप्रभु श्री योग साधन आश्रम ऋषिकेश में वास कर रहे थे। वहाँ उनको दर्शन प्राप्त किये और योग दीक्षा ली। श्री वृन्दावन धाम के दर्शन की तीव्र लालसा को गुरु चरणों में व्यक्त किया। उन्होंने सहर्ष आज्ञा प्रदान करते हुये कहा– प्रातः पाँच बजे से सात बजे तक अवश्य ध्यानाभ्यास करते रहना।' गुरुदेव ने इस आदेश का अक्षरशः पालन किया। गुरुदेव भगवान् स्वयं अपने श्री मुख से बतलाया करते थे कि उन्हीं दिनों में परम तत्त्व का साक्षात्कार हो गया महावाक्यों का अर्थ–साक्षात्कार हुआ।

पुनः यहीं से आनन्दकन्द श्रीप्रभु जी के दर्शनों की अभिलाषा से ऋषिकेश चले आये। वहाँ काफी समय तक आश्रम की कई प्रकार की सेवायें करते रहे। श्री प्रभु जी बीच–बीच

में योग प्रचार हेतु अथवा भ्रमणार्थ पहाड़ी क्षेत्रों में चले जाया करते थे। एक बार वे अल्मोड़ा की तरफ गये हुये थे श्री गुरुदेव की इच्छा हुई कि अब तो बदरीनाथ से ऊपर शतपथ की पहाड़ियों में कन्दराओं में रहकर निर्विकल्प समाधि में स्थित हो जायें। इस विचार से ऋषिकेश आश्रम से हिमालय की ओर जाने लगे किन्तु अन्तर्यामी श्री प्रभु जी ने इन्हें रोक लिया और पत्र के माध्यम से कहा–चिरंजीव ! हम तो जनकल्याण के लिये बस्तियों में बैठे हैं और तुम वनों में जा रहे हो। तुम्हारा यह विचार ठीक नहीं है ! अभी तुम समाज में ही रहो। अभी हमने तुमसे बहुत काम कराना है। तुम अध्यात्म जिज्ञासुओं को योग दीक्षा दो। तुम्हें वृन्दावन वास के समय ही प्रभु ने सारी शक्तियाँ प्रदान कर दी हैं।"

श्री प्रभु जी की आज्ञा को पाकर श्री गुरुदेव ने जगलों में जाने का विचार छोड़ दिया और समाज में रहकर आश्रम की समस्त गतिविधियों में रुचि लेने लगे। जीवन तत्त्व साधन, आसन, षटकर्म एवं प्राणायाम के माध्यम से सभी साध्यासाध्य बीमारियों का इलाज निःशुल्क कराया जाता था। सन् १९३०–४० के दशकों में लाहौर योग साधन आश्रम में सभी बहिरंग क्रियायें कराई जाती थी। श्री गुरुदेव जी भी कई–कई महीने वहाँ रहकर बीमारियों का इलाज करते तथा अध्यात्म–योग जिज्ञासुओं को शक्तिपात योग की दीक्षा देकर उन्हें उच्चतम ध्यानस्थितियाँ प्रदान करते थे।

श्री प्रभु जी ने अपने सामने ही इन्हें योग दीक्षा देने की आज्ञा दे दी। सर्वप्रथम एक सन्यासी ने योग दीक्षा लेने की जिज्ञासा प्रकट की। वे आर्य सन्यासी महात्मा घरौण्डा जिला करनाल के थे और उनकी उस समय आयु ७५–८० वर्ष की थी। गुरुदेव की आयु १८–२० वर्ष की थी। गुरुदेव ने श्री प्रभु जी को पत्र लिखकर पूछा। प्रभु जी ! एक सन्यासी दीक्षा लेना चाहते हैं क्या मुझे उन्हें दीक्षा देनी चाहिये ? श्री प्रभु जी का पत्र आया उसमें लिखा था–चिरंजीव ! तुम अवश्य ही उसे दीक्षा दे सकते हो।' गुरुदेव ने उन्हें दीक्षा दी। सच ही कहा है– 'गुणाः पूजास्थानम् गुणिषु न च लिंगम् न च वयः' अर्थात् गुण ही पूजा का कारण बनता है गुणी की न तो लिंग देखा जाता है और न ही आयु ! यही बात यहाँ चरितार्थ हुई थी।

सन १९३८ में श्री प्रभु जी के लीलावसान के पश्चात श्री गुरुदेव जी आगरा जिले में सवाई धाम में अपने गुरुदेव को पवित्र गुफा के दर्शन करने आये। इन्होंने इसी पावन योग पीठ को अपना प्रचार केन्द्र चुन लिया और यहीं से ही योग का प्रचार प्रारम्भ किया। पहले योग प्रचार का माध्यम आज जैसा नहीं था। गुरुदेव का मानना था कि संस्कारी व्यक्ति अपने आप इस योग मार्ग में आयेगा। वस्तुतः गुरुदेव स्वयं संस्कारी लोगों को खींच लिया करते हैं। गुरुदेव ने ४५–५० वर्ष तक योग का अथक प्रचार किया। योग के वास्तविक स्वरूप एवं उद्देश्य को जब तक साधक समझ नहीं लेता तब तक उस ओर रुचि भी नहीं होती है और उन्नति भी नहीं होती है। इसलिये गुरुदेव ने हमेशा ही अपने शिष्यों को योग

के सिद्धान्त समझाये हैं। बड़े-बड़े योग सम्मेलनों के अध्यक्ष पद को सुशोभित किया। आपका दमकता हुआ मुखमण्डल, अद्भुत कान्ति एवं सुडौल शरीर स्वतः ही आपके योगिराज होने का परिचय देता था।

आप श्रोत्रीय एवं ब्रह्मनिष्ठ दोनों ही थे। वेद-वेदांग एवं सम्पूर्ण योग शास्त्रों के पारंगत ज्ञाता थे। साथ ही आत्मवेत्ता थे। आत्मसाक्षात्कार प्राप्त महापुरुष थे। इसीलिये आप अपने समकालीन योगियों में अद्वितीय थे। दिसम्बर १६८६ में विश्व योग सम्मेलन में तत्कालीन राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह ने आपको योग शिरोमणि की उपाधि से अलंकृत किया। आपने लाखों शिष्यों को सिद्धयोग परम्परा की शक्तिपात दीक्षा दी। इस पद्धति में साधक का आत्मोत्थान तत्काल ही जाता है। विभिन्न यौगिक क्रियायें स्वतः ही होने लगती हैं। समाधि की प्राप्ति होकर साधक आत्मानन्द में विभोर रहने लगता है। अध्यात्म तत्व को प्रकाशित करने वाली 'सिद्धयोग' पत्रिका का गुरुदेव ने सन् १६६८ में सूत्रपात किया था जो आज भी अनवरत प्रकाशित हो रही है। योग विज्ञान के सिद्धान्तों व सूक्ष्म रहस्यों को प्रकाशित करने का प्रयास इस पत्रिका के माध्यम से होता है।

इस वर्ष विजय दशमी का पावन पर्व २ अक्टूबर को पड़ रहा है। इसी दिन गुरुदेव का इस अवनि मंडल पर प्राकट्य हुआ था। उनका यह प्राकट्य दिवस उनके द्वारा स्थापित अनेक योग केन्द्रों में बड़े हर्ष एवं उल्लास के साथ मनाया जा रहा है। परम कल्याण चाहने वाले शिष्य उनके दिव्य रूप का ध्यान युगों-युगों तक करते रहेंगे। इस पावन बेला में नित्य स्मरणीय गुरुदेव भगवान् के पावन व अभय चरण कमलों में सभी शिष्यों का कोटि-कोटि नमन है।

❊❊❊

येषां स एव भगवान् दययेदनन्तः
सर्वात्मनाऽऽश्रितपदो यदि निर्व्यलीकम्।
ते दुस्तरामतितरन्ति च देवमायां
नैषां ममाहमिति धीः श्वश्रृगालभक्ष्ये।।

(श्रीमद्भगव० २/७/४२)

अर्थात् जो निष्कपट भाव से अपना सर्वस्व और अपने-आपको भी उन भगवान् के चरण कमलों में निछावर कर देते हैं, उनपर वे अनन्त भगवान् स्वयं ही अपनी ओर से दया करते हैं। उनकी दया के पात्र ही उनकी दुस्तर माया का स्वरूप जानकर उस माया के पार जा पाते हैं। वास्तव में ऐसे ही पुरुष कुत्तों और सियारों के खाद्य (कलेवा) - रूप अपने और अपने पुत्रादि के शरीरों में 'यह मैं हूँ' और 'यह मेरे हैं' ऐसा भाव नहीं करते।

रूद्राक्ष के उपयोग से संवारें अपना जीवन

पं. संदीप ज्योतिषी

रुद्राक्ष से सभी परिचित हैं, जैसा कि नाम से स्पष्ट है यह रूद्र अर्थात् भगवान शिव की परमप्रिय वस्तु है। इसकी उत्पत्ति के संबंध में एक कथा प्रचलित है :–

त्रिपुर नामक महाबलशाली दैत्यराज ने संपूर्ण देवताओं को पराजित कर दिया था तब ब्रह्मा, विष्णु, इंद्र आदि देवताओं ने मिलकर महादेव रूद्र से त्रिपुर दैत्य को मारने की प्रार्थना की। इस प्रार्थना से प्रसन्न होकर महादेव ने कालाग्नि नामक अघोर अस्त्र हाथ में लिया और त्रिपुर से युद्ध करने चल पड़े। इस समय व्याकुलता और क्रोध के कारण महादेव के नेत्रों से जल गिरने लगा। धरती पर निज–निज स्थानों पर यह जल गिरा वहाँ रूद्राक्ष के वृक्षों की उत्पत्ति हुई।

मूलतः रूद्राक्ष के वृक्ष अयोध्या, मथुरा, काशी, लंका और हिमालय पर्वत पर पाए जाते हैं। शिवपुराण में भगवान शिव ने रुद्राक्ष को अपना ही लिंग विग्रह माना है और कहा है कि रुद्राक्ष मालाधारी को देखकर भूत–प्रेत, पिशाच, डाकिनी तथा बुरी आत्माएं दूर चली जाती हैं। रुद्राक्ष की माला पहनने से भगवान शिव, शिवा अर्थात् दुर्गा या शक्ति, गणेश विष्णु और सूर्य के साथ अन्य देवता भी प्रसन्न होते हैं। इस माला को गृहस्थ अथवा साधु, स्त्री या पुरुष सभी पहन सकते हैं। मानव मुक्ति के लिए १०० दानों की माला फलदायी मानी गई है। स्वास्थ्य एवं आरोग्यता के लिए १४० दानों की माला पहनना चाहिए। धन प्राप्ति के लिए ३२ दानों की माला धारण करना चाहिए। अन्य कोई मनोकामना हो तो १०८ दानों की माला पहनना चाहिए। रूद्राक्ष से अकाल मृत्यु का भय समाप्त हो जाता है। यह दीर्घायु एवं मन को शांति प्रदान करता है। शिवपुराण, लिंग पुराण, पदम पुराण आदि अनेक धार्मिक ग्रंथों में रुद्राक्ष की महत्ता दी गई है। रूद्राक्ष की माला पहनने से ब्लड प्रेशर, ह्रदय रोग एवं भूत बाधा आदि नष्ट होते हैं, रुद्राक्ष, पहनने वाले की अकाल मृत्यु कभी नहीं होती। रुद्राक्ष पर पड़ने वाली धारियों के अनुसार इसके चौदह प्रकार होते हैं। रुद्राक्ष एक मुखी से लेकर चौदह मुखी तक आते हैं। एक मुखी रूद्राक्ष पर एक रेखा होती है और चौदह मुखी पर चौदह। ये रेखाएं इन पर प्राकृतिक रूप से बनी होती हैं। एक मुखी रुद्राक्ष शिव स्वरूप माना जाता है। दो मुखी रुद्राक्ष शिव और शक्ति अर्थात् नारीश्वर स्वरुप होता है। तीन मुखी रुद्राक्ष ब्रह्मा, विष्णु, महेश का रूप है। चार मुखी रुद्राक्ष ब्रह्माजी का स्वरूप है। पाँच मुखी रुद्राक्ष पंचमुखी रुद्र का प्रतीक है। छह मुखी रुद्राक्ष

शिवपुत्र कार्तिकेय का स्वरूप है। सातमुखी रूद्राक्ष लक्ष्मी जी का स्वरूप माना जाता है साथ ही इसे सप्त ऋषि का स्वरूप भी मानते है। अष्ट मुखी रूद्राक्ष काल भैरव एवं गणेश जी का प्रतीक स्वरूप है। नवमुखी रूद्राक्ष नव दुर्गा का स्वरूप है। दस मुखी रूद्राक्ष भगवान विष्णु का स्वरूप है। बारह मुखी रूद्राक्ष भगवान सूर्य का स्वरूप है। तेरह मुखी रूद्राक्ष देवराज इंद्र का स्वरूप है। चौदह मुखी रूद्राक्ष हनुमानजी का स्वरूप माना जाता है। रूद्राक्ष की माला धारण करते समय कुछ बातों का ध्यान भी रखना चाहिए। खंडित एवं कटे–फटे रूद्राक्ष नही पहनना चाहिए। बाजार में नकली रूद्राक्ष भी मिलते हैं। अतः नकली–असली में परीक्षण हेतु इन्हें पानी में डालकर देखना चाहिए। अगर रूद्राक्ष नकली होगा तो पानी में तैरने लगेगा और असली रूद्राक्ष पानी में डूब जायेगा। रूद्राक्ष के दानों को सोने अथवा चाँदी में अथवा लाल धागे में पिरोकर प्रयोग में लाना चाहिए। रूद्राक्ष की माला पूर्णमासी, अमावस्या अथवा संक्रांति के दिन से पहनना प्रारंभ करना चाहिए।

❊❊❊

सोते समय सिर पूर्व दिशा की ओर क्यों ?

'वैखानसगृह्यसूत्र' में पश्चिम तथा उत्तर दिशा में सिर करके सोने का निषेध किया गया है। इसका कारण विज्ञान यह बताता है कि उत्तरी ध्रुव से दक्षिण ध्रुव की ओर इस प्रकार की लहरें चलती हैं, जो मस्तिष्क को हानि पहुँचाती है। इसीलिए उत्तर दिशा की ओर शिव का सिर ही किया जाता है।

पश्चिम दिशा में सिर करने के लिए 'शतपथ' ने निषेध किया है- तस्मादु ह न प्रतीचीन शिरः शयीत'

इसका कारण है कि "प्राची हि देवानां दिक", पूर्व दिशा देवताओं की दिशा है। उधर पैर करने से देवताओं का अपमान होता है। पूर्व दिशा की ओर सिर रखने से देवताओं की सम्मान की बात आयुर्वेद भी बताता है। गृह नक्षत्रादि सभी पश्चिम से पूर्व की ओर जाते हैं। अतः पूर्व दिशा देव दिशा स्पष्ट है।

श्री सद्गुरु की स्मृति में

''श्रद्धा वीर्य स्मृति समाधि प्रज्ञापूर्वक इतरेषाम''

डा० विजय सिंह

सद्गुरु से प्राप्त शक्ति के साथ, साधक के स्वयं पुरुषार्थ का साधना में बड़ा महत्व है। ज्यों–ज्यों सद्गुरु प्रदत्त क्रिया का साधक अनुसरण नियमानुवर्तिता से करता है, उसमें सत्व गुण का स्वाभाविक विकास होता है। श्रद्धा शनैः शनैः दृढ़ होकर उसमें वीर्य (उत्साह) और अन्तःकरण, समाधि तथा प्रज्ञा में साधक को प्रतिष्ठित कर देता है।

स्मृति क्या है ? सद्गुरु जी कहा करते–जब अनुभूत विषय का चिंतन करते ही वह प्रत्यक्ष हो जाय वह सम्प्रेषित मन द्वारा न हो, उसे ही स्मृति कहते हैं। योग साधकों को अपने पूर्व जन्मों (कई जन्मों का) का ज्ञान हो जाता है। इसे ही जातस्मरता कहा गया है। ध्यानियों को ध्यान में हुए अनुभव पूर्णतः स्मृति में रहा करते हैं। वे अनुभूतियाँ चिन्तन मात्र से साधक के मानस पटल पर ज्यों के त्यों बिम्बित हो उठते हैं। "मेरी निजानुभूतियाँ" में वरिष्ठ गुरुभाई महेन्द्र नारायण ने लिखा है–"जगदाधार ने जब अनुभूतियाँ लिखने की आज्ञा प्रदान की है तो वो ही पूर्ण करायेंगे। —विगत दस वर्षों की ध्यान की घटनायें एक के पश्चात एक चलचित्र की भाँति मानस पटल पर आने लगीं।"

भाई जी का उल्लसित–भाव से सद्गुरु चरण चिन्तन ही उनके गहरे ध्यान का रहस्य था। श्रद्धा, प्रेम और समर्पण भाव से वे उन दिनों सद्गुरु–आज्ञा से योग–प्रचार करते थे। आज भी सद्गुरु भगवान का रहस्यमय मुस्कराहट, मधुर करुणामय वात्सल्य पूर्ण चितवन, कभी खिलखिलाकर हँसना उनकी ही कृपा से एकान्त में स्मृत पटल पर उभरने लगता है।

स्वामी मुक्तानन्द के "चित्शक्ति विलास" में लिखा है–यत्र ध्यानं तत्र सर्वं। गुरुकृपा से उच्च ध्यान लग जाने से गृहस्थीसाधक की सब चिंताएँ मिट जाती हैं। शारीरिक, मानसिक, सांपत्तिक, सांसारिक सभी प्रश्न, सभी अभाव समाप्त हो जाते हैं। सर्वांगीण विकास हो जाता है। जीवन की ओर देखने के दृष्टिकोण में परिवर्तन हो जाता है। ध्यान सुखी जीवन की कुंजी है।"

निश्चयपूर्वक जीवन को जीना योग सिखाता है। वहीं सचेत मृत्यु का रहस्य भी योग द्वारा उद्घाटित होता है। "योग ही दिव्य जीवन है।"

सेवा की चर्चा चलने पर श्रीगुरुदेव कहते हैं–ठीक है, जीव के प्रति दया भाव रखकर सेवा करना एक बात है परन्तु निष्काम भाव का होना भी तो आवश्यक है ? नहीं तो वह सेवा जिसमें निष्कामता नहीं होगी निश्चय ही साधक के लिए सोने की बेड़ी (स्वर्ग गति भी

एक प्रकार से बन्धन ही है) बन जावेगी। पुण्य से स्वर्ग बन्धन, पाप से नर्क का बन्धन। पुण्य के समाप्त होने पर स्वर्ग से पतन भी दुःखदायी हुआ करता है। इसी हेतु से कहा गया है– सेवाधर्मों परम गहनो, योगिनामऽपि अगम्यम"। अर्थात् सेवा धर्म अति गहन है योगियों के द्वारा ही सम्भव है।

सदगुरु भगवान सहज ही अपने अनुरक्त भक्तों के शारीरिक रोगों को अपने ऊपर ले–लेकर भुगतान उनके क्लिष्ट संस्कारों का कर दिया करते थे। रोगों से आक्रान्त साधक तत्काल अपने को रोग–कष्ट से मुक्त पाता था।

शक्तिपात द्वारा उच्च भाव लोक में पहुँचे साधक कभी–कभी संसार त्याग जंगलों पहाड़ों में जाने की उत्कट सोच रखने लगते थे। श्री प्रभुजी का कथन होता–जंगलों में जाने की तब सोचो जब इतनी साधना परिपक्व हो जाय (अहिंसा प्रतिष्ठा) कि वहाँ हिंसक पशुओं से अपनी सुरक्षा कर सको। यह ठीक है कि वहाँ संसारी लोगों का अभाव होगा ईर्ष्या–द्वेष करने के लिये लोग नहीं मिलेंगे। परन्तु तत्व–विजयी बने बिना वहाँ पहाड़ों में सर्दी–गर्मी–वर्षा, भूख को कैसे सहन कर पाओगे ? कुछ हमारे उस समय के एक–दो अति उत्साही गुरुभाई इस तरह का दुःसाहस किए अन्ततः उन्हें पुनः संस्कारों से बाध्य होकर संसार में लौटना पड़ा।

श्री सदगुरु भगवान अपने बालकों को प्रबोधित करते व कहते हैं कि घर में ही एक कमरा एकान्त हेतु बना लो जिसमें नियमानुवर्तिता से श्री महाप्रभु जी की आरती पूजन करो एवं गुरु मंत्र का जाप करो, ध्यान करो। वह कक्ष छः महीने में तुम्हारे लिये हिमालय के गुफा का परिणाम देने वाला सिद्ध होगा। उस कक्ष में प्रवेश करते ही तुम्हारा मन एकाग्र होने लगेगा।

संत साहित्य में इन्हीं विचारों का अनुमोदन किया गया है–

काहे रे बन खोजन जाई।
सर्व निवासी सदा अलेपा, तोहि संग समाई।।
पुष्प मध्य ज्यों बास बसत है, मुकुर माहि जस छाई।
तैसे ही हरि बसें निरन्तर, घर ही खोजो भाई।।

यह महाशक्ति कुण्डलनी, सबका आदि कारण यह परमसत्ता, हमारे शरीर के कण–कण में व्याप्त है। सद्गुरु के बताये साधन से इसे अनुभव में लाना है। निश्चयपूर्वक साधना में लगने पर, सद्गुरु कृपा शक्ति का अनुभव किसी को अनहद नाद के रूप में, किसी को विविध रंगों के प्रकाश दर्शन के रूप में, यह चेतना एवं संस्कारों के विविध स्तरों के अनुसार होता है। साधना करना एवं अनुभूतियों को तटस्थ भाव से, दृष्टावत् देखना

चाहिये। उन दृश्यों के प्रभाव में अपनी चेतना को घुलने नहीं देना चाहिए। जिन साधकों में उतावलापन होता है, बहुत कुछ शीघ्र प्राप्त करने का, यह भी ठीक नहीं है। सदैव सद्गुरु के प्रति, माँ कुल कुण्डलनी के प्रति कृतज्ञ रहना चाहिये। इससे भाव जगत् अथवा श्रद्धा में विकास होता है।

सिद्धयोग में साधक का सद्गुरु के प्रति आत्मसमर्पण साधनानुभूति के साथ-साथ होता रहता है। गोस्वामी श्री तुलसीदास जी का स्वानुभूति मानस कथन इन्हीं भावों का पोषण करता है-बिनु परतीत प्रीति नहिं भाई, प्रीति बिना नहिं भगति दृढ़ाई। गोपियों से चलकर भक्तिमती मीराबाई समर्पण भाव के उत्कृष्ट उदाहरण है। साधना की परम सीमा परम उद्देश्य की पूर्ति आत्मसमर्पण के बिना असम्भव है।

सद्गुरु भगवान के सानिध्य में जो भी स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध आये कोई खाली नहीं गया। दृष्टिपात से, उदबोधन से, स्पर्श से, चिन्तन से अनवरत कृपावर्षा वे परम कारुणिक श्री प्रभुजी करते हैं। लोग अपने अभ्यन्तर में होने वाले अनुभूतियों को कभी कथा प्रत्यक्ष सद्गुरु चरणों में बताते, नहीं तो पत्रों के द्वारा अपने साधना का विवरण देते रहते थे।

शक्तिपात से कायिक मानसिक परिवर्तन होता प्रत्यक्ष स्वयं अनुभव में आता है। उन सबको वर्गीकृत करना कठिन है। शब्दों में ठीक-ठीक बाँध सकना तो और कठिन कार्य है। फिर भी हमने लोगों के अनुभव को पूछ जाँचकर पाया कि अन्नमयकोष-प्राणमय कोष संबंधी अनुभव, प्राणमय-मनोमय कोष सम्बन्धी अनुभव, मनोमय-विज्ञानमय कोष सम्बन्धी अनुभव, भावमय--अनुभूतियाँ तथा विरले पहुँचे हुये साधकों को आनन्दमय एवं प्रज्ञान अनुभूतियाँ होती हैं। सद्गुरु कृपा से उच्चस्तरीय अनुभूतियाँ साधक को इस हेतु हुआ करता है कि उसका उत्साहवर्धन हो तथा साधना में दृढ़तापूर्वक लगा रहे।

सद्गुरु प्रदत्त शक्तिपात से शिष्य में कुण्डलनी जागरण घटित होता है। मंत्र जाप श्वांस-प्रश्वास द्वारा करने पर जल्द ही अन्नमय-प्राणमय कोष में शक्ति के प्रभाव का अनुभव साधक करने लगता है। शरीर में चीटियों का सा रेंगना प्रतीत होने लगना, नसों का फड़कना, शरीर रुई मानिन्द हल्का अनुभव करना, भावना पुष्ट होने पर कुछ साधकों को आसन जमीन से ऊपर उठा हुआ है ऐसा भान होने लगता है। दादुरी वृत्ति का उदय होना भी भस्त्रिका के प्रभाव से लोगों में होता देखा है। कुछ साधकों के शरीर के विशेष अंगों का तीव्रता से घूमना, झटके लगना भिन्न-भिन्न प्रकार के क्लिष्ट आसन स्वयमेव होना आदि शक्ति के द्वारा अन्नमय कोषों का शोधन एवं आगे की भूमिका में प्रसरण हेतु होता है। साधक को इन सब क्रियाओं से भयभीत नहीं होना चाहिये अपितु अपनी भावना विशेष को छोड़कर शरीर को पूरी तरह शिथिल कर देना चाहिये। जिससे शक्ति की क्रिया

स्वतंत्रतापूर्वक कार्य कर सके और मन उच्च भूमिका में एकाग्र हो जाय।

अन्नमय–प्राणमय कोषों के परिष्कार के साथ ही साधक का मन ध्यान में एकाग्र होना प्रारम्भ होता है। भाव–प्रवण साधकों को अपने इष्ट का स्वरूप ध्यान में उदय (प्रकट) होने लगता है। कुण्डली का प्रकाश शरीरस्थ जिन–जिन नाड़ी पुंजों पर पड़ता है तब हठात् अट्टहास, रुदन, रोमांच आदि क्रियायें साधक बलात करता है। चित्त के और समाहित होने पर अनाहत नाद का उदय होता है घंटा, बांसुरी, झींगुर, मजीरा, शंख ध्वनि आदि दूर से आते सुनाई पड़ते हैं धीरे–धीरे निकटता बढ़ती जाती है। किसी–किसी को तीव्र प्रकाश उमड़ता–घुमड़ता मानस पटल पर ध्यान में दिखाई पड़ता है। स्थिरता बढ़ने पर इसी प्रकाश से इष्ट वा सद्गुरु, देवी–देवताओं के भव्य अकल्पनीय रूपों का दर्शन होता है।

मूर्धा ज्योति के अन्दर साधक को भू–लोक में सुन्दर वनस्थली, हिमालय, बड़े–बड़े नगर मिल कारखाने तथा सूक्ष्म लोकों के दिव्य नजारे चित्त को सहज ही समाधि की ओर ले जाते हैं। सिद्धों के दर्शन उनका आशीर्वचन तथा अन्यान्य अद्भुत नजारे देखता हुआ साधक निस्पंद घंटों सम्प्रज्ञात समाधि में आरुढ़ रहते हैं।

शक्ति के मूलाधार से उठकर ऊपर के चक्रों में अवस्थान से साधक के व्यक्तित्व में अपार परिवर्तन होता है। उनका वर्णन जो हम अपने गुरुभाइयों एवं बहनों से सुना व जाना वह लिखना अत्यन्त कठिन है। साधक की बुद्धि के अन्दर बड़ी तीव्रता आ जाती है। हृदय आनन्द की तरंगों से सराबोर हुआ रहता है। वह बड़ा शान्त–सुखमय तथा शक्ति पूरित अपने को पाता है। निर्भयता, आत्म–विश्वास, सुदृढ़ स्वास्थ्य को प्राप्त होता है। कवित्व–शक्ति, वाक्–शक्ति, प्रज्ञान का उदय होता है।

कितनी बातें सद्गुरु सानिध्य में रहकर यह जटिल मन वाला क्षुद्र देखता रहा, सुनता रहा, आश्चर्य चकित हुआ, भ्रमित हुआ, गौरवान्वित हुआ। अब समझ में आता है कि खुद अपने में खोना ही सब कुछ पाना है। बाहर किसको श्री प्रभुजी ने क्या दिया, क्या किया उसे क्या हुआ आदि बातों की खोज में ही अमूल्य समय जाया गया।

उन कृपा निधान के अमोघ वचन–लल्ला ! हम–तुम सभी भगवान सदाशिव रूप महाप्रभुजी के दृष्टि में हैं। अनन्य भाव से उनके चरण कमलों का आश्रय ले अनवरत गुरु मंत्र का जाप करते रहा करो। तुम्हारे दुनियावी काम वे कृपानिधान पलक झपकते कर देते हैं। निराश नहीं होओ। उत्साहपूर्वक अपने जीवन को योगमय बनाओ। देखो ! गीता में भगवान ने अर्जुन को क्या आदेश दिया है वही आदेश मेरा भी है–

"तस्मात् योगी भवार्जुनः"।

❋❋❋

अध्यात्म-सिद्धि का गणितीय सूत्र (२)

लेखक : डा० ऋषिराम शर्मा

इसी परमात्मभाव से क्रमशः प्राण, मन समस्त इन्द्रियाँ तथा पंच महाभूत आकाश, वायु जल, अग्नि तथा शिव को धारण करने वाली पृथिवी की उत्पत्ति होती है। एक और विलक्षण बात है कि जिस तरह काष्ठ में रहने वाली अग्नि किसी को दिखाई नहीं देती उसी तरह परमात्मा सर्वव्याप्त होते हुए भी उसकी प्रतीति नहीं होती जबकि वेदप्रमाण है कि–

''पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्योऽन्तरः पृथिवी तं न वेद
तस्य पृथिवी शरीरं सः पृथिवीमन्तरः यमयतिः।''

अर्थात् परमात्मा पृथिवी की उसी तरह अन्तरात्मा है जिस प्रकार अन्य शरीरधारियों की। वस्तुतः पृथिवी आदि सभी पंच भूतों पर वह सर्वव्याप्त रहकर सब पर नियन्त्रण करता है। यह परमसत्य है कि सब कुछ सर्वज्ञ ईश्वर के नियन्त्रण में कार्य करते हैं, वही समस्त विश्व का आधार है, वही मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों को ज्ञानशक्ति देता है तथा प्राण के माध्यम से जीवन देता है, क्योंकि ''यः प्राणेन प्राणिति सः आत्मा सर्वान्तरः'' अर्थात् अन्तरात्मी परमात्मा ही जीवनदाता है। वही सर्व प्राणियों के हृदय स्थल में रहकर कर्म सम्पादन करता है, सर्व घटनाओं का साक्षी है, सबका निवास स्थान है, त्रिगुणात्मिका माया से परे है, क्योंकि वेदवाणि बताती है कि–

''मायां तु प्रकृतिं विद्धि, मायिनं तु महेश्वरम्''
''शरीरः आत्मा प्राज्ञेन आत्मना अन्वारूढः''
''अचिन्त्याः ये भावाः न तान् तर्केण योजयेत्
प्रकृतिभ्यः परं यच्च तदचिन्त्यस्य लक्षणम्''

अर्थात् यह प्रकृति परमात्मा की माया है और वह स्वयं मायावी है किन्तु वह स्वयं अचिन्त्य है, क्योंकि प्रकृति की शक्तियों से परे है और यह शरीरधारी जीवात्मा उस सर्वज्ञ परमात्मा पर आरोपित है जैसे कि घट के नाम तथा रूप के कारण घटाकाश महाकाश पर आरोपित रहता है। मायाधीश परमात्मा ने नाम-रूप की भ्रान्तिजन्य सृष्टि की रचना कर अपनी महिमा तथा योगशक्ति का परिचय दिया है।

महर्षि वेदव्यास जी लिखते हैं कि–

''लोकवत्तु हि लीलाकैवल्यम्''

अर्थात् यह सृष्टि परमात्मा की वैसी ही लीला है जैसा कि लोक में अपने मनोरंजन के लिए मानव लीलाओं का आयोजन करते हैं। छान्दोग्योपनिषद में बताया है कि–

"अनेन जीवेन आत्मना अनुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि" अर्थात् परमात्मा ही जीवात्मा के रूप में शरीर में प्रवेश करके अपने को नाम-रूप में प्रकट करता है। यही जीवात्मा जब नाम-रूप की भ्रान्ति से मुक्त हो जाता है तो परमात्मा के दिव्य स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। वेदशास्त्र बताते हैं कि

'यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रे अस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय
तथा विद्वान नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्'

अर्थात् जैसे अपने मार्ग पर बहती हुई नदियाँ सभी व्यवधानों को पारकर अपने नाम-रूप को त्यागकर अथाह समुद्र में विलीन हो जाती है, वैसे ही ज्ञानी पुरुष अपनी नामरूप की उपाधि **से** मुक्त होकर परमात्मा के दिव्य स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। वह दिव्य स्वरूप क्या है, क्या कोई ऐसे स्वरूप को देख सकता है। हमारे शास्त्रों का उत्तर है कि यह संभव नहीं है, क्योंकि

"येन सर्वमिदं विजानाति तं केन विजानीयात्"

अर्थात् जिसके द्वारा स्थूल तथा सूक्ष्म सभी वस्तुओं को देखा जाता है, जाना जाता है, उसको देखने या जानने के लिए अन्य कोई दृष्टा या ज्ञाता है ही नहीं। शास्त्रों का प्रमाण है कि

"नान्योऽतोस्ति दृष्टा, नान्योऽतोस्ति श्रोता, नान्योऽतोस्ति मन्ता, नान्योऽतोस्ति विज्ञाता" (बृह० ३/७/२३)

"यत्र हि द्वैतमिव भवति तद् इतरः इतरं पश्यति, यत्र सर्वमात्मैव भवेत तत्र कं केन पश्येत्" (बृह० २/४/१४)

अर्थात् यह एक परम सत्य है कि एक ही परमात्मा समस्त प्राणियों की आँखों में दृष्टा है, कर्णेन्द्रिय में श्रोता, मन में सत्ता तथा बुद्धि में विज्ञाता है, अन्य को दृष्टा, श्रोता, मन्ता अथवा विज्ञाता है ही नहीं फिर उस सर्वव्यापक परमात्मा को कैसे जाना जाय। परमात्मा श्रीकृष्ण अपने मुखारविन्द से स्पष्ट कहते हैं कि-

"मया ततमिदं सर्वं जगत् अव्यक्तमूर्तिना
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेषु अवस्थितः"

अर्थात् समस्त संसार परमात्मा से ही कण-कण में व्याप्त है, समग्र प्राणि-जगत परमात्मा के सर्वव्यापक शरीर में स्थित है, किन्तु माया की आवरण-शक्ति के कारण कार्यजगत मिथ्या होने से सर्वज्ञ परमात्मा में नहीं है। इस जटिल समस्या के समाधान के लिए स्वयं परमात्मा ने सगुणरूप धारण किया जिससे कि द्वैतभाव में परमात्मा का साक्षात्कार हो सके। यद्यपि हमारी आँखें स्वयं अपने को नही देख सकती, किन्तु दर्पण के माध्यम से देख सकती है। इसी प्रकार परमात्मा ने अपने को देखने के लिए ही माया रूपी दर्पण का निर्माण किया है। यह प्रकृति ही दर्पण है। महर्षि पतंजलि ने स्पष्ट किया है कि

''प्रकाशस्थितिक्रियाशीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यम्'' (योगदर्शन २/१८)

''तदर्थमेव दृश्यस्यात्मा'' (योगदर्शन २/२१)

''स्वस्वामिशक्त्योः स्वरूपोप्लब्धिहेतु संयोगः'' (योगदर्शन २/२३)

अर्थात् परमात्मा ने इस दृश्य–जगत की दो उद्देश्यों की पूर्ति के लिए रचना की है। प्रथम उद्देश्य है कि सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण और उनके विकारों मन, बुद्धि, इन्द्रियों तथ पंच महाभूतों के माध्यम से लीला करना, पंच क्लेशों के द्वारा कर्माशय का निर्माण करना तथा कर्मविधान के अनुसार सुख–दुख के भोग प्रदान करना और दूसरा उद्देश्य है कि चित्तरूप दर्पण को योगसाधना के द्वारा निर्मल बनाकर उसमें अपने स्वरूप के दर्शन करना, अपनी ही योग–शक्ति की महिमा में निवास करना। इसी कारण परमात्मारूप दृष्टा तथा दृश्यरूप योगमाया का संयोग हुआ है। इस दृश्य–जगत की आत्मा योगमाया प्रकृति परमात्मा की सेविका है। जब जीवात्मा पर इस महाशक्ति जगत जननी महामाया की कृपा होती है तभी निर्मल चित्ताकाश रूपी दर्पण में उसे परमात्मा के स्वरूप के दर्शन होते हैं, अज्ञान का नाश होता है और मोक्ष की प्राप्ति होती है।

समझने की आवश्यकता है कि यह परमात्मस्वभाव क्या है और इसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है ? परमात्मा श्रीकृष्ण ने स्वयं बताया है कि कौन मेरे स्वभाव को प्राप्त कर लेता है।

''त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्।।
नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा दृष्टानुपश्यति।
गुणेभ्यश्च परं वेत्तिमद्भावं सोऽधिगच्छति।।
गुणानेतानतीत्य त्रीन् देही देहसमुद्भवान्।
जन्ममृत्युजरादुःखै र्विमुक्तोऽमृतमश्नुते।।
मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
सः गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय च कल्पते।।

अर्थात् यह संसार माया के तीन गुण और उनसे उत्पन्न होने वाले भावविकारों से बना है। यह भाव पंच क्लेश अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश के कारण मन तथा बुद्धि की चित्तवृत्तियों से बनते हैं। इन्हीं के प्रभाव में कर्मफल में राग–द्वेष से कर्माशय बनता है। हमारे वेद–शास्त्रों का विषय भी यही है कि किस कर्म का कैसा फल होता है और कर्म फल भोगने के लिए अनेक भिन्न–भिन्न लोकों में जीवात्मा की गति तथा योनियों की प्राप्ति का ज्ञान भी वेदशास्त्रों में मिलता है। किन्तु इससे न तो परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान होता है और न जन्म–मृत्यु तथा जरा, व्याधि एवं मानसिक सुख–दुःखों से मुक्ति

मिलती है। अतः आनन्दकन्द भगवान श्रीकृष्ण का आदेश है कि परमात्मभाव को प्राप्त करने के लिए गुणातीत स्थिति को प्राप्त करना परमावश्यक है। गुणातीत स्थिति में ही चित्त सुख-दुःख, शीतोष्ण, मानापमान आदि द्वन्द्वों से मुक्त हो सकता है, संकल्प-विकल्पों को त्यागकर परमात्मस्वरूप में समाहित होता है। जब तक चित्त में संकल्प-विकल्प शान्त तथा उदित होते रहते हैं, तब तक आत्मा भी वृत्याकार ही रहती है। जब दृष्टा चित्त के विषय से मुक्त होता है तभी उसे परमात्मभाव की अनुभूति होती है। जब देहधारी जीवात्मा देह में उत्पन्न होने वाले सात्विकी राजसी तथा तामसी भावों से प्रभावित नहीं होता तभी वह सभी त्रिगुणात्मिका माया के दुःखों से मुक्त होकर अमृतत्व को प्राप्त करता है। ऐसी स्थिति को प्राप्त करने के लिए परमात्मा की शरणागति तथा मन तथा बुद्धि को संसार तथा सांसारिक वृत्तियों से मुक्त कर परमात्मा की भक्ति में लगाना ही सहज तथा सरलतम उपाय है, अन्यथा अष्टांग योग की साधनाओं के द्वारा चित्त की अशुद्धियों का नाश कर परमात्मा के स्वभाव तथा ऐश्वर्य को पाया जा सकता है। उपनिषद में स्पष्ट किया गया है कि-

"ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्वः ततस्तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः"

अर्थात् गुणविकारों से मुक्त निर्मल चित्त में ज्ञानचक्षुओं से परमात्मा के दर्शन होते हैं। जब साधक सतोगुण रजोगुण तथा तमोगुण को पराभूत कर अपने अलिंग स्वरूप में रहता है, उस समय चित्त पूर्णरूपेण निर्मल दर्पण की तरह रहता है और तब ऋतम्भरा प्रज्ञा को परमात्मा के सच्चिदानन्द एवं व्यापक स्वरूप के दर्शन होते हैं। शास्त्रों में इस स्वरूपस्थिति का वर्णन इस प्रकार किया है-

संशान्तसर्वसंकल्पा या शिलावदवतिष्ठति।
जागृतनिद्राविनिर्मुक्ता सा स्वरूपस्थितिः परा।।

अर्थात् जब चित्त में समस्त संकल्प-विकल्प शून्य हो जाते हैं और चित्त एक शिला की तरह शान्त तथा स्थिर हो जाता है और जागृतावस्था तथा निद्रावस्था दोनों से मुक्त हो जाता है, वही परमात्मभाव में स्वरूपावस्था है। यह अवस्था कब प्राप्त होती है इसका निर्देश जगदात्मा श्रीकृष्ण ने इस प्रकार किया है-

"ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्तः उच्यते योगी समलोष्टाश्मकांचनः।।

अर्थात् जब योगी ज्ञान तथा विज्ञान दोनों से तृप्त हो जाता है, इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर मन तथा बुद्धि को परमात्मस्वरूप में लीन कर लेता है और सर्वत्र समदर्शी होकर मुक्तावस्था को पा लेता है, तभी उसको सहज स्वरूपस्थिति प्राप्त होती है।

***

एक योगी की महायात्रा

प्रेषक–वेदव्रत द्विवेदी, उमापुर (इलाहाबाद)

क्या आप जानते हैं–ये शब्द "एक योगी की महायात्रा" किस महापुरुष के लिए उपयुक्त है ? उपरोक्त शब्द सिद्धों के शिरोमणि–आनन्दकन्द योग योगेश्वर (भूमा) महापुरुष अजन्मा, विभु एवं व्यापक योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज जो हमारे और सभी प्राणियों के आराध्य देव, अकारण दयालु, भाग्यविधाता हैं–उनके लिए प्रयुक्त है। सद्गुरुदेव भगवान की लीला, प्रकाट्य दिवस से लेकर उनकी महायात्रा तक का विशद वर्णन लेखनी से परे है। किन्तु एक अबोध शिशु के नाते जो भी अज्ञानतावश अल्पज्ञ बुद्धि द्वारा भावों और विचारों को रखने का सतत् प्रयास कर रहा हूँ। एक तरह से यही मुहावरा चरितार्थ हो रहा है, उन सर्वशक्तिमान, अखण्ड मण्डलाकार तेज से व्याप्त करोड़ों सूर्यों की भाँति संसार को प्रकाशित करने वाले सूर्य को दीपक दिखाना है।

अखिल ब्रह्माण्डनायक सद्गुरुदेव भगवान का अवतार कलियुग के प्रथम चरण में (कलिमल–हरण) अवतार माना जा सकता है कलियुग के प्रथम चरण में एक सिद्धेश्वर पूर्ण, परम् ब्रह्म, परमेश्वर, सद्गुरुदेव भगवान का अवतार है, बाल्यावस्था से ही, गुरुदेव भगवान लीला करते रहे कभी–कभी विराट रूप में अपने समकक्ष बच्चों को दर्शन देना, फिर कभी कृष्ण भगवान के साथ खेलना यह, हृदयस्पर्शी रहस्य किसी को मालूम नहीं होता था। आपके प्रधानाध्यापक आचार्य विश्व बन्धु शास्त्री जी आपकी अद्भुत लीला, उदभट् विद्वता को देखकर प्रायः यही कहा करते थे कि "चन्द्रमोहन यथा नाम गुण के प्रतीक मेरा शिष्य विश्व को एक नई रोशनी देगा।"

आप सादगी के प्रतिमूर्ति थे। आपकी वाणी में ओजस्विता तथा पारदर्शिता, स्नेह, प्रेम, माधुर्य तथा सभी के प्रति सहानुभूति कूट–कूट कर भरी थी।

आप एक कुशल वक्ता के साथ–साथ कुशल पथ–प्रदर्शक के रूप में बखूबी कार्य करते रहे। दिशाहीन लोगों को योग के मार्ग पर लगाया। आपने प्रतिभा पुञ्ज बनकर बिखरे हुए मानव समाज को महामानव के रूप में आकर योग का जो दिव्य संदेश दिया वह आज के युग में प्रासंगिक है। जहाँ तक नेतृत्व की बात आती है वहां अपनी असाधारण प्रतिभा के साथ आपने विश्व योग सम्मेलनों की अध्यक्षता की, तथा विश्व योग शिरोमणि के पुरस्कार से सम्मानित किया गया और पूरे विश्व को एक सूत्र में पिरोकर योगमार्ग पर चलने की प्रेरणा देते रहे। यद्यपि, आज के इस घोर कलियुग में सिद्धों का मिलना अत्यन्त कठिन है फिर भी आपके महान चरणों की कृपा से कोई सन्त मिल भी जाय तो वह बहिर्मुखी मन जब तक अन्तरमुखी नहीं बन जाता तब तक वह पारस पत्थर

को साधारण पत्थर ही समझता रहेगा।

संत कबीर दास के शब्दों में–

''कबीरा इस संसार को भया मोतियाबिन्द''।

सारा संसार ही, अज्ञानी बनकर इस पृथ्वी का भार बना हुआ है। आवश्यकता इस बात की है जब तक विषय, वासनाओं के झमेले में पड़े रहेंगे तब तक मुक्ति मिल ही नहीं सकती। फिर–फिर जन्म होगा और फिर–फिर मरण होगा। जन्म और मरण के चक्र से जीव छूट ही नहीं पाता। कबीर दास जी, एक युगदृष्टा महापुरुष थे। उन्होंने निर्गुण भक्ति के माध्यम से सद्गुरु को ही सर्वोपरि ईश्वर कहा है–'एक पुरुष की नारि रह ली, अब भई पञ्च भतारी।' जब तक जीव 'शिव' के भाव में रहता है, अर्थात एक परमपिता परमेश्वर की शरण में रहता है तब तक वह एक पुरुष की पत्नि यानी पतिव्रता स्त्री की तरह है। या यों कह लिया जाय, एक निष्ठ सद्गुरु सदशिष्या है। परन्तु विषय भोगों में लगते हुए वही जीव पञ्चभतारी हो गया–काम, क्रोध, मोह, माया और मत्सर विकार हैं। यही योग मार्ग में बाधक हैं।

सद्गुरु देव भगवान अपने प्यारे लाडले बच्चों को सदशिष्य के साथ–साथ सदगुरु बनाना चाहते थे परन्तु जैसे होय होतव्यता, तैसी उपजे बुद्धि, वाली कहावत बिल्कुल सही है। यदि संस्कारी नहीं है और बुद्धि पर परदा पड़ा हुआ है तो स्वयं जगत गुरु सदाशिव भगवान ही उपदेश को देना शुरु करें तब भी निर्बुद्धि–सद्बुद्धि को धारण नहीं कर सकता। जन्म जन्मान्तरों की पड़ी हुई काई रूपी मल इतना प्रगाढ़ हो गयी है कि योग की पहली (सीढ़ी) सोपान तक ही नहीं पहुंचने देता।

गुरुदेव भगवान क्या थे, अपने शिष्यों को क्या बनाना चाहते थे इनका निर्णय केवल एक निष्ठ गुरु भक्त ही समझ सकता है। विश्व वंदित योगयोगेश्वर होते हुए भी मानवीय बनकर लाखों प्राणियों का उद्धार किया, जो भी आपके चरण–शरण में गया आपने अपनी करुणा तथा दयालुता से सबकी मुरादें पूरी की। आपकी महायात्रा योगेश्वर श्रीकृष्ण की तरह ही लोगों को चमत्कारी एवं योग विधि से तीन माह पहले से ही लोगों को बोध करा दिया था। किन्तु मन्द बुद्धि के चलते आपके मनोभावों को कोई समझ ही नहीं सका।

आपने सादे, धवल वेश में नर रूप धारण कर नारायण, जगतपति, विष्णु बनकर सद्गुरुदेव भगवान के रूप में अवतार लेकर लोगों को योग दीक्षायें दीं।

२४ जून सन १९९० को भयानक काली रात को अपने पंचतत्व को परमपिता परमेश्वर महाप्रभु जी के श्री विग्रह में रूपान्तरित कर व्यापक अखण्ड सत्ता में समाहित होकर आज भी लाखों शिष्यों का लौकिक पारलौकिक जीवन सुधार रहे हैं।

सद्गुरु व्यापक ब्रह्म है, आदि अनन्त अखण्ड।
ज्ञान चक्षु बिनु दिखे नहिं, जाने विरला संत।।

संवाई आले, भाग जगा दे...........

—जगदीश राय बंसल 'अधम' (गोहाना)

तर्ज : गाडी आले०

संवाई आले, भाग जगा दे, दया की दृष्टि डाल,
गुरु जी मैं आए गया (टेक)

जबसे तेरा शरणा मिला, आरती पूजा करता हूँ
भोर उठ कै ध्यान करूं, चरणों में शीश झुकाता हूँ
लल्ला कह कर उर से लगा लो, रख दो सिर पर हाथ।। गुरु जी.....

हृदय रूपी मेरी खेती, चरण गंग बिन सूख रही
कैसे फल फूल लगें, आशा मेरी टूट रही
योग प्रेम की वर्षा कर दो, कर लूं मैं अस्नान।। गुरुजी.....

भजन पाठ मुझे आता ना, ध्यान कहाँ से लग ज्यागा
पांच तत्व का नव द्वारा, जल कर ढेरी हो जायगा
इस नगरी में आओ गुरु जी, दो दो गीता ज्ञान।। गुरुजी.......

माली सींचै सौ घड़ा, बाग हरा हो जाता है
योगेश्वर की शरण पड़ा फल जल्दी पक जाता है
धोली धोती धोला कुर्ता, मन्द-मन्द मुस्कान।। गुरुजी.......

शंकर के अवतारी हो, दुनियां के रखवाली हो
लाखों पापी तार दिए, झोली सबकी भरते हो
अशरण शरण के रक्षक दाता, मैं हूँ बालक नादान।। गुरुजी........

अड़सठ तीर्थ श्री चरणों में, मेरा गोता लगवा दो
प्रभु रामलाल के चरणों में, मेरा खाता खुलवा दो
हर पल का मैं आशावादी दे दो आशीर्वाद।। गुरुजी.......

तुम ही ब्रह्मा, तुम ही विष्णु, तुम ही महा देवा हो
सुर नर मुनि जन पाते मुक्ति, ध्यान तेरा जो करता हो
जब-जब भीड़ पड़े भक्तों पर, आकर करते निहाल।। गुरुजी......

योगेश्वर का मनोदेश हुआ, संवाई में प्रवेश मिला
पाप के ऊपर पुण्य छाया, सिद्धेश्वर का दर्श हुआ
लीला अद्भुत लीलाधर की अधम सदा कुर्बान।। गुरुजी........

❋❋❋

गुरुदेव के प्रति शिष्य के समर्पित भाव

कु० रचना शर्मा, गंगापुर सिटी

"यस्य स्मरण मात्रेण ज्ञानमुत्पद्यते स्वयं
सदैव सर्वसम्पत्तिः तस्मै श्री गुरवे नमः।।

जिनके स्मरण मात्र से ज्ञान स्वय उत्पन्न होता है सदा ही सर्व सम्पत्ति को प्राप्त होता है उन श्री गुरुदेव को बारंबार प्रणाम है।

जगन्नियता, परमतत्त्व, संसार सागर के उद्धारकर्ता, अज अनादि सिद्ध, परम करुणार्णव, भक्त–वत्सल गुरुदेव की महिमा अवर्णनीय है। हमारे पास तो उनकी महिमा गाने के लिए शब्द ही नही हैं–जैसा कि कहा भी गया है–

"सब पर्वत स्याही करूँ घोरूँ समुन्दर जाय
धरती का कागज करूँ सद्गुरु स्तुती न समाय"

गुरुदेव की सर्वव्यापकता, महानता का वर्णन करना वाणी का विषय नही है, अब तक के इतिहास में न तो गुरुदेव के वास्तविक स्वरूप का वर्णन कोई कर पाया और न ही कर पाएगा, क्योंकि जिसकी महानता, दयालुता सागर की भाँति असीम व अनन्त है उसका कोई क्या पार पाएगा। उन परमपिता परमेश्वर की सर्वव्यापकता वर्णन करना उसी प्रकार कठिन है जिस प्रकार कि बालू से तेल निकालना, या फिर खरगोश के सींग उगाना।

कभी–कभी जीव किसी महान व्यक्तित्व के समक्ष आकर अपने–आपको पूर्णतया समर्पित कर देता है ऐसा असाधारण व्यक्तित्व सिवाय गुरुदेव के और कौन हो सकता है जिसके समीप जाते ही हृदय में आनंद की हिलोरें उठने लगती हैं, रोम–रोम पुलकित हो जाता है, कण्ठ अवरुद्ध हो जाता है; वाणी मूक हो जाती है, ऐसा क्या है उसके अंदर ऐसा कौन–सा परम तेज व्याप्त है उसकी देह में जिसके समक्ष जाते ही जीव अपने आपको पूर्णतया समर्पित कर देता है। उन्हें देखते ही ऐसा लगता है, अपना सारा दुःख परेशानियाँ उन्हें कह डालें मगर कुछ क्षण बाद ही एहसास होता है कि हमारे सारे दुःख सारी परेशानियाँ कहाँ गायब हो गए हृदय प्रफुल्लित हो उठता है, अंतर से आवाज आती है–जीवन की हर घटना, हर पल हर क्षण में घटित हमारे जीवन के समस्त रहस्य उसके समक्ष उद्घाटित कर दें।

मगर उनका सामीप्य पाते ही लगता है कुछ न कहें बस उनके अलौकिक रूप को निहारें मौन रहकर ही जब वो हमारे सब भावों को पढ़ लेते हैं तो फिर कहने की क्या आवश्यकता, क्योंकि घट–घट वासी अन्तर्यामी परमपिता परमेश्वर अपने शिष्य के जीवन में घटने वाले प्रत्येक क्षण से भली–भाँति परिचित हैं। क्या कभी माता–पिता अपनी संतान

की परेशानियों, उलझनों को नहीं जानते ? बिना संवाद के ही वो हमारी समस्याओं का समाधान करते हैं तो आपसी वार्तालाप से क्या अभिप्राय ?

हम स्वयं को बिना किसी कारण के किसी उधेड़बुन के ज्यों का त्यों छोड़ देते हैं। उससे न कुछ छिपाते हैं न हिचकिचाते हैं। हम स्वय ही इसका आँकलन नहीं कर पाते कि किसी से इतना लगाव इतना अपनापन क्यों ? हम तो बस उसके होकर रह जाते हैं। जगत के सब रिश्ते-नाते उस परम पावन अलौकिक रिश्ते के समक्ष हमें तुच्छ व क्षणिक लगने लगते हैं, क्योंकि गुरुदेव और शिष्य का संबंध तो जन्म जन्मांतर का है। उस अलौकिक तेज के समक्ष पहुँचते ही कुछ सीखने और समझने के लिए मन स्वतः ही बंद किवाड़ खोल देता है। ऐसा लगता है जैसे मिल गई मंजिल मिल गया किनारा, मिट गई थकान अब कहीं कुछ कहने की करने की जरूरत नहीं सामने विराजमान परब्रह्म मेरी अनकही खामोशी को पढ़ने में माहिर हैं। मेरी आँखों में डूबे अश्कों को उबारने की कला जानता है। उनके होंठ हिलते हैं तो ऐसा लगता है जैसे अमृत बरस रहा हो। उनके शब्दों को सुनकर भान होता है कि यही जिज्ञासा तो मेरी थी यही तो हम कहना चाहते थे। उनके शब्द हृदय की एक-एक धड़कनों को छूकर जाते हैं उनका प्रेम संसार में समा जाता है। हृदय से आवाज निकलती है साधक शिष्य भाव-विभोर हो उठता है-

"अविनाशी हे परम पिता मेरे
छूकर मेरे हृदय की धड़कनों को
गीत का अंकुर तुमने सजाया
तुम क्या मिले मुझे साथी सफर में
इस जीवन से मोह हो गया हमें
यह हृदय पाहन बना रहता सदा
यदि जीवन में तुम न मिलते गुरुदेव मेरे।"

गुरु के सर्वव्यापी तेज का अंश साधक के हृदय में प्रवेश कर जाता है। उसका अन्तर्मन अलौकिक प्रकाश से भर जाता है। तभी साधक का भाव जगत में प्रवेश होता जाता है और फिर वह अपने गुरुदेव के प्रेम रूपी मदिरा का नित-प्रतिदिन पान करता है। अपने गुरुदेव के बताए दिव्य पथ पर चलने को वह अपने आपको दृढ़ संकल्पित कर लेता है क्योंकि तब साधक के लिए गुरुदेव की आज्ञा प्रेम का विषय बन जाती है। गुरुदेव के सामीप्य की अभिलाषा मन में लिए वह निरंतर अपने लक्ष्य पर अग्रसर होता रहता है।

यह सब अनुभूति होना गुरुदेव की कृपा से ही संभव है क्योंकि जब तक वो अपनी दिव्य दृष्टि से साधक के अंतर में प्रकाश नहीं भर देते तब तक हमें जीवन की यथार्थ सत्यता का ज्ञान नहीं हो पाता। उस अलौकिक दिव्य प्रकाश को प्राप्त कर लेने के पश्चात् कुछ प्राप्त करना शेष नहीं रह जाता। साधक के हृदय में बस निरंतर यही अभिलाषा बनी

रहती है कि कैसे किस तरह अपने गुरुदेव का सामीप्य हमें प्राप्त होगा। उस अलौकिक दिव्य प्रकाश में ही साधक को अपना सर्वस्व नजर आता है। गुरुदेव की अनूठी अद्भुत छटा के दर्शन होते हैं। वही उसके जीवन का अत्यानंद बन जाता है।

करुणामूर्ति गुरुदेव की करुणा कृपा से ही हमें दिव्य पथ के दर्शन होते हैं। जिस पथ पर चलने के लिए हमने इस देह को प्राप्त किया।

"करुणामूर्ति दयामूर्ति पारब्रह्म परमेश्वर मेरे
तेरी कृपा दृष्टि मिली जब से मुझे
मूक मन को स्वर मिल गए मेरे
एक सूनापन जो मन को डसे था
अनंत कोटी प्रकाश से भर दिया हृदय मेरा।।"

उन करुणा सागर की कृपा कोर साधक शिष्य को मिली नहीं कि बस उसके सम्पूर्ण जीवन में बदलाव आ जाता है। उसके जीवन की दिशा ही परिवर्तित हो जाती है। उसे अपने जीवन की यथार्थता का बोध हो जाता है। वह निरंतर अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होने को प्रयत्नरत रहता है।

उन कृपा सागर की कृपा इससे और अधिक क्या होगी ? कि वह अज्ञान रूपी अंधकार से घिरे हुए हम जैसे तुच्छ जीवों के हृदय में ज्ञान रूपी तीव्र प्रकाश का संचार करते हैं। जैसा कि कहा भी गया है–

"अज्ञानतिमिरान्धान्य ज्ञानान्जन शलाक्या
चक्षुरुन्मिलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः।"

गुरुदेव की कृपा दृष्टि साधक को मिली नहीं कि बस उसका सम्पूर्ण जीवन एक अद्भुत आनंद से युक्त होकर परम पावन बन जाता है। उनकी दिव्य अलौकिक रूप की झलक मिलते ही जगत के खिलौने तुच्छ लगने लगता है। जिस प्रकार शिशु को जब तक माँ की झलक नहीं मिलती तब तक ही वह खिलौनों से अपना मन बहलाता है। माँ के समीप आते ही दौड़कर उनके पास पहुँच जाता है। उसकी आँखों में एक अनोखी चमक उभर आती है। ठीक उसी प्रकार शिष्य भी गुरुदेव की झलक मिलते ही अपना सब कुछ त्यागकर सिर्फ उन्हीं के पास जाना चाहता है। कैसे किस प्रकार वो मेरे परमपिता मुझे अपने हृदय से लगाएँगे। भाँति–भाँति के उपक्रमों से अपने परमपिता को रिझाना चाहता है।

उसके अंतर में हलचल मची रहती है। सिर्फ एक ही प्यास उसके हृदय को उद्विग्न करती है कि कब वो करुणानिधान हमारे ऊपर कृपा दृष्टि डालेंगे ? कहीं हमारी सुंदरता में कोई कमी तो नहीं। सुंदरता से आशय बाहरी सुंदरता से नहीं अपितु आन्तरिक सुंदरता अपने अंतर्मन की स्वच्छता है। जितना हमारा आंतरिक विकास होता है उतना ही गुरुदेव से प्रेम बढ़ता है। और फिर साधक और भी अधिक लगन व दृढ़ता के साथ अपने लक्ष्य

पर अग्रसर होता है। संसार में रहते हुए सांसारिक कार्य में रत होते हुए भी उसका ध्यान तो सिर्फ अपने परमपिता पर लगा रहता है। साधक के जीवन में नित नई प्यास है। नित घुटन है, वह हर एक पल में मरकर जीने की कला सीखता है। मगर यही तड़प, यही प्यास उसके लिए सर्वानंद बन जाती है।

मगर अपने हृदय में इस तरह की अनुभूति करना या फिर कहें इस प्रकार की तड़प पैदा करना हमारे स्वयं के वश की बात नही क्योंकि जब तक वो परमेश्वर हमारे ऊपर अपनी कृपा दृष्टि नहीं डालेंगे तब तक इस तरह की प्रेम रूपी अद्भुत मिठास हमें नही मिल सकती।

उन करुणानिधान की कृपा रूपी छाया बड़ी ही अद्भुत है उसका अर्थ नहीं समझाया जा सकता। समझ में भी कैसे आ सकता है ? कोई पथिक अपने मार्ग पर थका मांदा चला आ रहा है। लंबी यात्रा की थकान है मगर अभी तक उसे कोई छाया नही मिली तो फिर कैसे वो समझ पाएगा कि वृक्ष की छाया तले विश्राम का क्या अर्थ है ? कौन–सी युक्ति–विधि काम आएगी समझाने में कि छाया का क्या अर्थ है ?

अर्थ नही समझाया जा सकता हमें उससे कहना ही पड़ेगा कि वृक्ष है। छाया भी है। पहले तुम विश्राम करो। वृक्ष के तले विश्राम करने पर ही तुम जान पाओगे कि विश्राम क्या है ? अनुभव करने के उपरान्त ही पथिक को ज्ञात होता है इसे जानने का और कोई उपाय नहीं।

उन अविनाशी परमतत्त्व के बारे में हम और क्या कहें ? हमारे अंतर्मन से तो बस यही आवाज निकलती है कि सद्गुरु वही है जो हमारे अंदर छिपे अंतरतम की वाणी बोलता है। जो हम आज तक अपने भीतर नही खोज पाए वह बाहर से हमें सुनाता है उसे अनुभूति में लाता है। जिस दिन हम अपने अंतर में उसे खोजने में समर्थ हो जायेंगे उस दिन पाएंगे की यह सद्गुरु रूपी वृक्ष बाहर नही था। वह तो हमारे अंदर ही विद्यमान था मगर हम अज्ञानान्धकार से ग्रसित थे। गुरुदेव के इशारे से हमने उसे खोजना प्रारंभ किया और अपने अंतर में ही उस परमसुख को प्राप्त कर लिया।

सद्गुरुदेव की छाया में होने का अर्थ है एक परम प्रेम में पड़ जाना। एक ऐसे प्रेम के रंग में अपने आपको रंगना जिसका कोई निर्वचन नही हो सकता जिसकी कोई व्याख्या नही हो सकती।

सद्गुरु के प्रेम में पड़ने का अर्थ है उसके रंग में रंगने को राजी। सद्गुरु तो रंगरेज है वह हमारी मन रूपी ओढ़नी को भक्ति के रंग में रंग देता है। मगर इसमें हमारा सम्मिलित होना, हमारा समर्पित भाव होना अत्यंत आवश्यक है। वृक्ष हरा भरा घनी छाया से भरा है। लेकिन यदि हम उसके नीचे विश्राम नहीं करेंगे तो वृक्ष कुछ भी नही कर पाएगा। हमें वृक्ष के तले जाना ही पड़ेगा। गुरुदेव हमारे जीवन में आमूल रूपांतरण कर देते हैं। मगर उसमें हमारा समर्पित भाव होना अत्यंत आवश्यक है। जब सद्गुरु की

मौजूदगी हमें जीवन से भी अधिक लगने लगे तभी उसके रंग में रंगने को हम राजी होंगे।

उसकी लीला को बिना अनुभव किए कोई क्या समझ पाएगा, न उसकी बात समझ आए। न उसके भेद पता चले। न राज पता चले। लेकिन फिर भी प्रेम के वशीभूत खिंचे चले जाते हैं। अंतर में निरंतर भाव बना रहता है। वो दिव्य देही मुझसे बोले क्या यही कम है ? नहीं समझना उसका भेद, जब समय आएगा वो स्वयं हमें समझा देंगे। सारे भेद–सारे रहस्य स्वयं ही हमारे सामने उद्घाटित हो जायेंगे। उन्होंने हमें उपदेश देने के योग्य समझा, अपना ज्ञान हमारे हृदय में उड़ेला क्या यह कम है ?

साधक शिष्य के अंतर में जब इस प्रकार की भावधारा निकले तब ही सद्गुरु की कृपा छाया में होने का भाव समझ में आ सकता है क्योंकि गुरु कृपा रूपी अमूल्य निधि को पाना और उसको जानना स्वयं की अनुभूति का विषय है इसको जानने का कोई उपाय नहीं।

❊ ❊ ❊

उपासना

डॉ. सुरेन्द्र प्रताप सिंह 'अमित', हमीरपुर (उ०प्र०)

भावनायें हैं समर्पित तुम इसे स्वीकार कर लो
साधना के कठिन पथ पर आज अंगीकार कर लो।।

मैं बटोही मंदमति हूँ चरण डगमग पड़े मेरे
साधना के स्वच्छ पथ पर हैं बहुत कुहरे घनेरे।
रश्मियां गुरुदेव की हैं अब नहीं चिंता मुझे रे
मैं रुका हूँ कुछ घड़ी तक तुम इन्हें अब दूर कर दो।।

मैं अभी नन्हा पखेरू प्राण उनमें सबल भर दो
डगमगाऊँ जब कभी भी बांह का सम्बल मुझे दो।
जब कभी व्याकुल ये मन हो योग का अमृत पिला दो
गोद में मुझको उठा लो ध्यान की लोरी सुना दो।।

मैं व्यवस्था में तुम्हारी नया अब व्यतिक्रम खड़ा हूँ
चिर प्रतीक्षित साधना में नया मैं उपक्रम खड़ा हूँ।
जो बने जैसी बने मुझसे वही कुछ कर रहा हूँ
भावना के हार मेरे तुम इसे स्वीकार कर लो।।

।। आज अंगीकार कर लो।।

गुरुदेव के संस्मरण

अमित मिश्र

हम लोग श्री प्रभुजी के चरणों में सन् १९९६ में आये। मैं अपनी दादी के साथ (श्रीमति राधा मिश्रा) पहली बार 'श्री चरणों' में आई० आई० टी० में अक्टूबर माह में होने वाले कार्यक्रम में उपस्थित हुआ। उन दिनों मैं ओ० एफ० इण्टर कॉलेज में कक्षा नौ में पढ़ता था। विद्यालय से छुट्टी तभी मिलती थी जब कोई अति आवश्यक काम हो। परन्तु मैंने आई० आई० टी० कानपुर में जाने के लिए छुट्टी मार दी। उस दिन मेरा प्रैक्टिकल भी था। परन्तु मैंने कार्यक्रम में श्री चरणों में जाना उचित समझा और गया। अगले दिन जब मैं कॉलेज गया तो किसी अन्य लड़के ने मेरी हाजिरी बोल दी थी। मैं जब एप्लीकेशन लेकर क्लास टीचर के पास गया तो उसने कहा तुम तो कल आये थे तुम्हारी हाजिरी लगी हुई है। परन्तु मुझे लगा कि लड़कों ने शरारत में हाजिरी बोल दी होगी।

धीरे–धीरे दिन व्यतीत होते गये मैं हाईस्कूल में पहुँच गया। मेरे घर में तब पासपोर्ट वाला स्वरूप ही श्री गुरुदेव जी का था। जिनकी हम पूजा करते थे। मेरी बहन शाम को मंगलवार के दिन हनुमान जी की आरती करने के लिए अगरबत्ती जला रही थी (उन दिनों जन्माष्टमी होने के कारण भगवान जी की पटरी सजाई हुई थी।) अचानक कागज के सजावटी माला ने आग पकड़ ली और पूरी पटरी में आग तेजी से बढ़ने लगी। तब मेरी बहन ने चिल्लाकर हम लोगों को बुलाया। हमने जल्दी से आग को बुझाया। जिस स्थान पर आग जल रही थी उसी जगह बिल्कुल आग के समीप श्री प्रभु जी का पासपोर्ट वाला स्वरूप रखा था किन्तु हैरत की बात यह कि उनके स्वरूप की ऊपर की प्लास्टिक नहीं पिघली। जबकि आग काफी तीव्र थी। स्वरूप जैसा था वैसा ही रहा। उस दिन की घटना ने मुझे काफी प्रभावित किया और मैं श्री प्रभु जी के चरणों में समर्पित हो गया।

अगली घटना सन् २००३ की है। मेरे पिताजी को सरकारी कार्य से दिल्ली जाना था। वे घर में आवश्यक सामान अटैची में रख रहे थे। मम्मी ने कहा कि प्रभुजी का पासपोर्ट साइज वाला स्वरूप रख लो। कुछ देर बाद मैंने फिर छोटे भाई व बहन, फिर मम्मी ने कई बार इसी बात की पुनरावृत्ति की। पापा कुछ आवश्यक कागज देख रहे थे। उन्होंने गुस्सा करके श्री प्रभु जी के पासपोर्ट वाले स्वरूप को अटैची में रख दिया और बोले "लो रख लिया तुम लोगों ने तो परेशान कर दिया।" निर्धारित समय पर पापाजी दिल्ली को रवाना हो गये। दिल्ली स्टेशन पर किसी ने पापा जी की जेब काट ली। पापा ने पैसे पैंट की अंदर वाली जेब में रखे थे अर्थात् चोर जेब में। उसमें कुल १००० या १२०० रु० थे, परन्तु सभी एक के ऊपर एक थे। लेकिन केवल २०० रु० ही जेबकतरा चुरा पाया। बाहर जाकर

पापाजी ने किसी कार्यवश अटैची खोली तो श्री गुरुदेव जी का स्वरूप गायब था। बहुत ढूंढा पर नहीं मिला। इस प्रकार श्री गुरुदेव जी ने एक और पाठ पढ़ाया। उस दिन के बाद से पापा कहीं भी बाहर जाते है तो सबसे पहले श्री प्रभु जी के स्वरूप को रखते है।

वर्ष २००४ में पिताजी को सरकारी कार्य से कलकत्ता जाना था। सेना के लिए कोई सामान भेजा जा रहा था अतः ट्रक के माध्यम से जाना था। जाते वक्त रास्ते में ट्रक ड्राइवर का गाँव पड़ा। उसके यहाँ किसी की शादी थी। वो पिताजी से बोला कि एक दिन रुक जाइये शादी में जाना आवश्यक है। पापाजी ने उसकी बात आवश्यक जानकर मान ली। अपने घर पर ही उसने पिताजी के रुकने का प्रबंध कर दिया। रात को पिताजी सो गये। कुछ देर बाद उनकी नींद खुली तो देखा कि बाहर उजाला है। वे सोचे कि सुबह हो गई है और शौच हेतु खेतों की ओर चले पड़े। परन्तु चारों ओर सन्नाटा देखकर कुछ शंका हुई। परन्तु पिताजी ने सोचा कि चलो गाँववालों की तो यही रहने की आदत है। वे थोड़ा आगे बढ़े तो देखा कि थोड़ी दूर पर कोई सफेद कपड़े में करीब छः–सात फुट लम्बा व चौड़ा लेटा हुआ है। सर्दी का समय था। पिताजी के कमीज के ऊपरी जेब में श्री प्रभु जी का पासपोर्ट वाला स्वरूप था। अतः जैसे–जैसे पिताजी आगे बढ़ते वो सफेद कपड़े वाला और दूर होता रहा। अचानक एक स्थान पर पिताजी को जैसे किसी ने रोक दिया और एकदम से वे वापस उस स्थान की ओर लौट पड़े जिधर वे ठहरे थे। जिस स्थान पर वे ठहरे थे वहीं से कुछ दूरी पर एक पेड़ था उसी दूरी से वे लौट पड़े। जब वे घर (जहाँ ठहरे थे) पहुँचे तो घड़ी देखा उसमें केवल २ बजे थे। अगले दिन सुबह तक पिताजी को नींद नहीं आई। सुबह गाँव वालों ने बताया कि जिधर आप गये थे उस ओर एक आत्मा रहती है जो काफी दूर से ही लोगों को दिखाई देने लगती है और जब वह व्यक्ति उस पेड़ तक पहुँच जाता है तो उनका अनर्थ हो जाता है। पता नहीं आप बच कैसे गये। परन्तु पिताजी को बात समझ में आ गई थी। उन्होंने जेब से स्वरूप निकालकर प्रार्थना की है प्रभु श्री रामलाल जी आपने आज फिर रक्षा की। इस प्रकार से मेरे आपके सबके गुरुदेव ने एक बार फिर हमें अनर्थ से बचा लिया।

वर्ष २००२ जुलाई में मैंने अपने एक मित्र के साथ बी० ए० में एडमिशन लिया। हमने साथ–साथ "नेशनल ट्रेड अप्रेन्टिस" (N.T.A.) का आवेदन भी किया था। आयुध निर्माण (S.A.F.) व F.G.K. फैक्ट्रियों का हमने पेपर (N.T.A.) दिया। कुछ दिनों पश्चात् मैं और मेरा मित्र कॉलेज से लौट रहे थे। रास्ते में उसके ताऊजी का घर पड़ता है। बारिश तीव्र हो रही थी। उसने कहा कुछ देर ताऊजी के यहाँ रुक जाते हैं। बारिश बंद हो जायेगी तो चलेंगे। उसके N.T.A. Exam. में पता अपने ताऊजी का दिया था। जैसे हमने उसके ताऊजी के घर में प्रवेश किया। उसके ताऊ की बहन ने उसे 'बुलावा पत्र' S.A.F. फैक्ट्री का ला कर दे दिया। जो कि Interview के लिए "बुलावा पत्र" था। बारिश बंद होने के

पश्चात् हम अपने–अपने घरों को चले आये। मैं उस वक्त बहुत ही दुःखी हो गया था। अतः घर आकर मैं श्री प्रभुजी रामलाल जी महाराज जी के चरणों में जाकर रो पड़ा। मैंने मन ही मन प्रार्थना की कि हे सर्वशक्तिमान मेरे दादा गुरुदेव महाप्रभु जी रामलाल जी महाराज कृपया करके मेरा भी करवायें। उस दिन के मात्र १० दिन बाद मेरा Call Letter F.G.K. फैक्ट्री से आ गया और मैंने तीन वर्षीय ट्रेनिंग Nov. २००५ तक पूर्ण की। धन्य हैं मेरे सद्गुरुदेव जिन्होंने मात्र एक बार मेरे मांगने से जो माँगा दे दिया।

तीन वर्षीय कोर्स समाप्त होने के बाद मेरा इसी कोर्स से सम्बन्धित पेपर २५ मई २००६ से प्रारम्भ होना था। परन्तु मेरा एम० ए० का पेपर (परीक्षा) १७ मई से प्रारम्भ हो रही थी। अतः एक परीक्षा से वंचित रहना साफ नजर आ रहा था। मैंने श्री चरणों में प्रार्थना की कि हे गुरुदेव, हे सिद्धगुफा वासी अब तो एक परीक्षा से वंचित रहना ही होगा। रक्षा करें। मैंने बुझे मन से यह प्रार्थना की। परन्तु तीन–चार दिन के पश्चात पता चला कि N.T.A. से सम्बन्धित परीक्षा किसी चुनाव के आने से एक माह टल गई है। मुझे समझ में नही आ रहा था कि पता नहीं एकाएक ये कैसा चुनाव आ गया। परन्तु मुझे समझ में आ गया कि मेरी प्रार्थना व्यर्थ नही गई। हालाँकि मैंने बुझे मन से प्रार्थना की थी। प्रभु जी ने अपनी लीला दिखा दी थी।

अगली घटना हाल ही की है, मेरे घर के बगल में श्री रमेश चन्द गुप्ता जी रहते हैं। मैं उन्हें बाबा कहता हूँ। जुलाई २००६ में उनके यहाँ सत्संग था। सत्संग समाप्त होने के पश्चात् सभी गुरुभाई भोजन (श्रीप्रसाद) ग्रहण कर रहे थे। एकाएक श्री सविता अंकल भी अन्य अन्य गुरुभाईयों से विचार विमर्श करने लगे कि कल "श्री सवाई धाम" गुरुजी के यहाँ कौन–कौन चलेगा। मेरे मन में विचार आया कि "काश! मैं भी श्री सिद्धगुफा में दर्शन करने जाऊँ!" अगले दिन उन्हें शाम को चार बजे रवाना होना था।

सुबह–सुबह नौ बजे मेरी दादी श्रीमती राधा मिश्रा मेरे पास आईं और मम्मी से कहा कि सोनू (मुझे) को सवाई धाम भेज दो, मेरे साथ एक सीट खाली है। और मैं सवाई धाम गया, वहाँ दर्शन, गुफा दर्शन आदि करके मुझे बहुत आनंद का अनुभव हुआ।

"मैं तो सिर्फ एक तथ्य को भली–भाँति से जानता हूँ, कि सद्गुरुदेव महाराज किसी के मन में आई बातों को तुरंत पूर्ण करते हैं।"

"बाबा तेरी कृपा से हर काम हो रहा है,
करते हो सभी आप, मेरा नाम हो रहा है।"

अखण्ड ज्योति प्रभु श्री रामलाल जै जै, सिद्ध गुफा–वासी प्रभु रामलाल जै जै।

❊ ❊ ❊

यथार्थ प्रेम में गुरु कृपा

राजेश कुमार सिंह, रोहुआ (बलिया)

पौराणिक कथा है कि एक बार भगवान कृष्ण बहुत अस्वस्थ हो गये। बहुत तरह की दवाइयां देने के बाद भी रोग का निवारण नहीं हुआ। तब लोग बैठकर विचार-विमर्श करने लगे कि इस रोग को कैसे दूर किया जाए। भगवान कृष्ण से भी पूछा गया कि इस रोग की दवा क्या है ? भगवान बोले कि किसी के चरण धूलि को अगर मेरे सिर पर लगा दोगे तो मैं रोग से मुक्त हो जाऊँगा। अब भला भगवान के सिर पर लगाने के लिए चरण धूलि दे तो कौन दे। खुद भगवान के चरण धूलि को सिर पर लगा-लगा कर मनुष्य कर्म बन्धन से मुक्ति पाते हैं। मनुष्य खुद का चरण रज भगवान के सिर पर लगाकर नरक में जाने को तैयार कहां। खुद ब्रह्मर्षि नारद जी परेशान, करें तो क्या करें, उधर भगवान को अति पीड़ा। त्रैलोक में घूमते हैं, भगवान के रोग के विषय में बतलाते, निरामय के उपाय भी बतलाते हैं मगर कोई तैयार नहीं। नारद जी घूमते-घूमते गोकुल में भी जाते हैं यहां भी कोई देने का तैयार नहीं। सभी ब्रजवासी भगवान के कष्ट को दूर होने की कामना करते है पर चरण धूलि रूपी दवा को देने को कोई तैयार नहीं। लेकिन जब ये बात राधा रानी के कानों में पड़ती है तो दौड़कर ब्रह्मर्षि नारद जी के पास आती है और अपने चरण धूलि को सहर्ष देकर कहती है, मैं कोटि जन्म तक नरक में भले वास करूँ, वो मुझे स्वीकार है मगर अपने प्रियतम कन्हैया को होने वाली पीड़ा स्वीकार नहीं। आप इस चरण धूलि को जल्दी लेकर जाओ और मेरे प्राणधार के सिर पर लगाकर रोग से मुक्त कर दो। यह यथार्थ भक्ति है अर्थात् गुरुदेव के प्रति, परम सत्ता के प्रति सच्चा प्यार।

गुरुदेव से यथार्थ प्रेम कैसे होगा या साधक की शक्ति का उद्गम कहां है ? ये विचारणीय प्रश्न है। मनुष्य मात्र ही मुक्ति लाभ की आशा रखता है। जीवन के हर क्षेत्र में मनुष्य मुक्ति चाहता है, किन्तु सही पथ निर्देशन न मिलने के कारण मनुष्य की यह चाह यह आकांक्षा अपूर्ण रह जाती है। सामाजिक, नैतिक तथा जीवन के अन्य क्षेत्रों में जैसे मुक्ति मिलती है, उसी तरह आध्यात्मिक क्षेत्र में भी मुक्ति मिलती है। आध्यात्मिक मुक्ति का अर्थ हुआ जागतिक मानसिक तथा आध्यात्मिक क्षेत्र में मनुष्य की जो चिन्ता है, जो बन्धन है उससे हमेशा के लिए मुक्ति लाभ तथा शाश्वत सत्ता गुरुदेव, परमपुरुष के साथ मिलकर एक हो जाना। यही हुई यथार्थ मुक्ति इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए साधक जब साधना करते है, मुक्ति लाभ के लिए साधक जब प्रयासशील होते हैं तब सभी अवस्थाओं

में गुरुदेव को सामने रखकर चलना होता है।

प्रश्न ये भी उठता है कि साधक गुरुदेव को सामने रखें तो क्यों रखें ? क्योंकि गुरुदेव तो हमेशा अपने जन के साथ रहते हैं। मनुष्य कर्म करता है और कर्म के द्वारा ही कर्म बन्धन से मुक्त होता है; बस यहां पर यह ध्यान देने योग्य है कि जब कोई कर्म करें तो स्मरण रखें कि गुरुदेव हमें देख रहे है और जो कर्म कर रहा हूं वह अपनी संतुष्टि के लिए नहीं बल्कि गुरुदेव की संतुष्टि के लिए उन्हें आनन्द देने के लिए कर रहा हूं। कर्म अगर कर रहे हैं किन्तु हृदय में गुरुदेव के प्रति प्रेम नहीं है तो ऐसा कर्म निष्फल हैं अर्थात इस तरह के कर्म के द्वारा मुक्ति लाभ असम्भव है।

कुछ लोग हैं जो योग साधना का अभ्यास करते हैं। उनका विश्वास है कि कठोर योग साधना के द्वारा मुक्ति लाभ होगा। मगर वह किस प्रकार का योग साधन। घण्टों आसन लगाकर बैठना योग है, जहां मन, इन्द्रियां काम करना बंद कर देती हैं। नहीं इससे कुछ नहीं होने वाला। जब तक जीवात्मा का परमात्मा के साथ एकाकार नहीं हो जाता तब तक उसे योग नहीं कहा जा सकता। लेकिन जीवात्मा का परमात्मा के साथ मिलन कब होगा ? जब गुरुदेव के साथ, परम सत्ता के साथ प्रेम का सम्पर्क स्थापित होगा। प्रेम का सम्पर्क स्थापित न होने से मनुष्य डर से गुरुदेव से दूर रह जायेगा। साधक के मन में होने वाली हीनता का बोध उसके प्रभूत क्षति का कारण होता है। मैं क्षुद्र हूं, इतने विराट परम पुरुष के साथ हमारा सम्पर्क नहीं हो सकता, इस तरह के विचार मन में नहीं आनी चाहिए।

कुछ लोग हैं जो सोचते हैं कि ज्ञान के द्वारा भगवान मिल जायेंगे। वे ज्ञान के द्वारा भगवत्त स्वरूप को समझ लेने का दावा करते हैं। मगर प्रश्न उठता है कि आप ज्ञान के द्वारा गुरुदेव को कैसे समझ लेंगे। आपका ज्ञान सीमित है और गुरुदेव के पास अनंत ज्ञान, शक्ति, सामर्थ्य है। आप जिस दृष्टि कोण से उन्हें देखेंगे, पायेंगे कि उनकी कोई सीमा ही नहीं है। आप छोटे मन, मस्तिष्क, क्षुद्र बुद्धि से गुरुदेव को कैसे समझ पायेंगे। ज्ञान को आधार बनाकर गुरुदेव को समझने की बातें करना व्यर्थ के प्रलाप हैं, लेकिन वही प्रेम को आधार बनाकर अगर गुरुदेव के पास जायें तो फिर क्या कहना।

कुछ ऐसे भी लोग हैं जो समझते हैं घण्टी बजाने से, दीप जलाने से अर्थात् यन्त्रवत विधि से पूजा करने से लक्ष्य प्राप्ति होगी अर्थात गुरुदेव मिल जायेंगे; मगर देखते हैं कि वो सब क्रिया कर्म करने के लिए अभ्यस्त तो हो गये मगर गुरुदेव उनको कहीं नजर नहीं आते। घण्टी बजाना, दीप जलाना उनका लक्ष्य हो गया न कि गुरुदेव की प्राप्ति। कहीं पूजा, अनुष्ठान होता है तो समाज के लोग वहां पहुँचते हैं। देखने को मिलता है कि वो

प्रसाद के बारे में ही पूछते हैं कि प्रसाद बंटा कि नहीं, कब तक बटेगा, कितने बार शंख बज गये, आरती हुई कि नहीं इत्यादि स्थूल चीजों के ऊपर केवल बातें करते रहते हैं।

मनुष्य ध्यान करता है, सोचता है गुरुदेव को मैं देख रहा हूँ। मनुष्य उस परमात्मा को कैसे देखेगा, जब तक उनकी कृपा नहीं होगी, गुरुदेव की शक्ति उसके पास न होगी। मनुष्य को चाहिए भगवान के चिन्तन में बैठे तो यही कहे कि हे गुरुदेव आप हमारे ऊपर हमेशा नजर रखे ताकि मैं हमेशा आपके अभिप्राय के अनुसार कार्य करता रहूँ। इस तरह की भावना उसी के मन में आती है जिसका उस परमसत्ता से आन्तरिक आकर्षण होता है। यह विश्व ब्रह्माण्ड गुरुदेव की सृष्टि है, प्रत्येक जीव उनकी संतान है। अगर आप प्रत्येक जीव से प्रेम करेंगे तो गुरुदेव संतुष्ट होंगे तथा यथार्थ प्रेम का सम्पर्क स्थापित होगा। अच्छे साधक गुरुदेव के आनंद को अपना समझते हैं।

इस बात को याद रखना होगा कि हमारी साधना जागतिक, आदर्श, नैतिक, सामाजिक प्रत्येक क्षेत्र में जो भी कर्म है उस सबके पीछे यही मनोभाव रहे कि हमें ईश्वर से प्रेम करना है, इसलिए कि हमारे प्रेम से गुरुदेव आनंदित रहेंगे। सिर्फ गुरुदेव के लिए यह जीवन समर्पित है।

❊ ❊ ❊

गजल

भूपेन्द्र 'अंकुश', जलेसर

पतितपावन आपको कहता जहां।
मुझ पतित को भी उबारो; महरबां।।

रूप धर बाराह का तारी धरा
गन्दगी के ढेर बिच जिसका मकां।। १।।

फूल से तो प्यार करता हर कोई
शूल से बस प्रेम रखता बागबां।। २।।

ढाँकता सबको मगर मेरे लिये
सिकुड़ा-सिकुड़ा हो गया क्यों आसमां।। ३।।

है बहुत कमजोर सी मेरी अजा
ध्यान से सुननी है मेरी; रहनुमां।। ४।।

द्वादश निवेदन

त्रिभुवन नाथ मिश्र, लखनऊ

मेरा तन मन प्रतिक्षण रमा रहे, गुरुदेव आपके चरणों में।
मेरा जन्म जन्म अनुराग रहे, गुरुदेव आपके चरणों में।।

तुम कण कण घट घट वासी हो, तुम पूर्ण ब्रह्म अविनाशी हो।
तुम इस पृथ्वी के धारक हो, तुम पूर्ण सृष्टि के कारक हो।
हे सोमेश्वर के ''सोमनाथ'', मेरा मस्तक रख लो चरणों में। मेरा०

तुम चाँद सितारे दिनकर हो, तुम गंगा यमुना सागर हो।
तुम प्राण वायु के दाता हो, तुम सबके भाग्य विधाता हो।
हे काशी के प्रभु ''विश्वनाथ'' मैं नमन करूं तेरे चरणों में। मेरा०

तुम सारे जग की माया हो, तुम पूर्ण सृष्टि की काया हो।
तुम ममता प्रेम की छाया हो, तुम से जिसने यह पाया हो।
हे भोले भाले ''वैद्यनाथ'' सब कुछ अर्पण तेरे चरणों में। मेरा०

तुम ब्रह्म रूप से कारक हो, तुम विष्णु रूप से पालक हो।
तुम रुद्र रूप संहारक हो, तुम सृष्टि के निर्णायक हो।
हे उज्जैनी के ''महाकाल'' मेरा शीश पड़ा तेरे चरणों में। मेरा०

तुम रामचन्द्र वनवासी हो, तुम पावन सीता नारी हो।
तुम भरत लक्ष्मण शत्रुघ्न हो, तुम दुष्ट दशानन तारक हो।
हे सेतु बन्धु के ''रामेश्वर'' मैं न्यौछावर तेरे चरणों में। मेरा०

तुम जीवों को भरमाते हो, तुम कर्म भोग भोगवाते हो।
तुम पूर्ण कृपा बरसाते हो, तुम सच्चा मार्ग दिखाते हो।
हे शिव आलय के ''घृष्णेश्वर'' मैं शरण पड़ा तेरी चरणों में। मेरा०

तुम शुद्ध मुक्ति के दाता हो, तुम निर्मल भक्ति प्रदाता हो।
तुम दया कृपा की मूरत हो, तुम भक्तों के हिय सूरज हो।
हे श्री शैल के ''मल्लिकार्जुन'' मैं जाप करूं तेरे चरणों में। मेरा०

तुम भव सागर के सेतु हो, तुम संत जनों के हेतु हो।
तुम हिम गिरि गुफा निवासी हो, तुम कोमल ह्रदय के वासी हो।
हे हिम आलय ''केदारनाथ'' मैं वास करूँ तेरे चरणों में। मेरा०

तुम शेषनाथ से भूषित हो, तुम सुर असुरों से पूजित हो।
तुम पार्वती के प्रियतम हो, तुम सत् पुरुषों से सेवित हो।
हे सदर्ग नगर के ''नागनाथ'' मेरी दृष्टि रहे तेरे चरणों में। मेरा०

तुम प्रेतों द्वारा वन्दित हो, तुम चिता भस्म से लेपित हो।
तुम भक्तों के हितकारी हो, तुम पाप ताप के हारी हो।
हे प्रणव रूप ''ऊँकारेश्वर'' मेरी स्वाँसस्वाँस'' तेरे चरणों में। मेरी०

तुम जटा जानह्वी धारक हो, तुम डमरू ध्वनि विस्तारक हो।
तुम भाल चन्द्रमा शोभित हो, तुम महाकाल से पूजित हो।
हे भक्तन हितकारी ''भीम शंकर'' मेरा रोम रोम तेरे चरणों में। मेरा०

तुम काम देव के नाशक हो, तुम इन्द्र आदि के पोषक हो।
तुम महादेव देवों के हो, तुम अश्मशान के वासी हो।
हे ''त्रिभुवन'' के प्रभु ''त्रियम्बकेश्वर'' मेरा ध्यान रहे तेरे चरणों में। मेरा०

❋ ❋ ❋

श्रीभगवान् मंगलमय, आनन्दमय, ऐश्वर्यमय, ज्ञानमय, दयामय, सौन्दर्यमय, माधुर्यमय और सामर्थ्यमय हैं। वे प्रत्येक प्राणी के स्वाभाविक ही सुहृद् हैं। उनसे माँगना हो तो यही माँगना चाहिये कि 'हे भगवन् ! तुम जो ठीक समझो, मेरे लिये वही विधान करो। तुम जो चाहो सो मुझे दो, मैं चाहूँ सो मत दो ! ऐसी शक्ति दो जिससे मेरे मन में कोई कामना ही न पैदा हो; और यदि हो तथा वह तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध हो तो उसे तुरंत नष्ट कर दो। उसे पूरी तो करो ही मत।'

गोरखपुर में योग सम्मेलन

प्रेषक—**प्रो० रुद्रदत्त चतुर्वेदी** (गोरखपुर)

गोरखपुर में गोरखनाथ मन्दिर में प्रतिवर्ष की भाँति ब्रह्मलीन युगपुरुष महन्त श्री दिग्विजय नाथ जी के पुण्य तिथि के उपलक्ष्य में परमपूज्य महन्त श्री अवेद्यनाथ जी की अध्यक्षता में सप्त दिवसीय कार्यक्रम का आयोजन किया जाता है। इस वर्ष भी ३ सितम्बर से १० सितम्बर तक विभिन्न विषयों पर चर्चा हुई। इस सम्मेलन में ख्याति प्राप्त बड़े-बड़े सन्त एवं धर्माचार्य एवं योगी पधारते है। श्री सिद्धगुफा सवाई आगरा से भी गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के प्रिय शिष्य आचार्य डा० दासलाल ब्रह्मचारी भी विगत वर्षो से यहाँ इस सम्मेलन में पधारते हैं। ६ सितम्बर को इनका भी योग सम्मेलन में व्याख्यान हुआ। इस व्याख्यान का सारांश 'राष्ट्रीय सहारा' में इस प्रकार था "योग हमारी प्राचीन विधा है। आदिकाल से ऋषि-मुनियों के प्रयास से हमें विरासत में मिली है। उन्होंने कहा कि योग विद्या के जान लेने पर सारी विधायें जान ली जाती हैं। यह विधा दो प्रकार से मिलती है। एक सिद्ध-योग की परम्परा से दूसरे साधन योग या क्रिया-योग के माध्यम से। उन्होंने आगे कहा कि- योग मार्ग की जीवन के हर क्षेत्र में उपयोगिता है। इसके अपनाने से हम निरोग तो होते ही है साथ ही ध्यान-योग के अभ्यास से हमारे अन्दर दिव्यता आती है। मन को एकाग्र करने से शरीर के भीतर ही चमत्कार होगा। इस प्रकार से योग अन्तरशक्ति को जगाने व दुःखों को दूर करने में समर्थ है।"

योगाचार्य डॉ० दासलाल जी ने ८ सितम्बर को महायोगी गोरखनाथ योग प्रशिक्षण कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रशिक्षुओं को सम्बोधित करते हुये जो व्याख्यान दिया उसका सार ११ सितम्बर के दैनिक जागरण में इस प्रकार से आया है, "योग विद्या के जान लेने पर सभी विधायें साध्य हो जाती है। स्वास्थ्य लाभ व आत्मदर्शन योग के दो प्रमुख लक्ष्य हैं। क्लेश व कर्मों की निवृत्ति से यह लक्ष्य मिलता है। सिद्धयोगी पाप-पुण्य से परे हो जाता है। इसके मन व प्राण के सामरस्य से लौकिक व्याधियों का निराकरण तथा पारमार्थिक पथ प्रशस्त होता है। उन्होंने कहा कि योग में पहला विघ्न व्याधि है। शरीर में विद्यमान मलों की निवृत्ति के लिये यौगिक षट्कर्म जरूरी है। वात, पित्त एवं कफ शरीर के मल हैं। इन सभी की शरीर में संतुलित मात्रा में ही उपयोगिता है। आसन एवं प्राणायाम द्वारा हम इन्हें सम अवस्था में रखते हैं। उन्होंने कहा कि कुछ ऐसे कर्म हैं जिनका इसी जन्म में फल मिलता है, जैसे तीव्र संवेग से किया जाप, ध्यान एवं समाधि का फल इसी जन्म में मिल जाता है। यदि ठीक से समाधि की पराकाष्ठा को प्राप्त कर लें तो इसी जन्म में मुक्ति मिल जाती है।

उन्होंने कहा कि अत्यन्त क्रूर कर्मों का भी फल इसी जन्म में मिल जाता है। विश्वास में आये प्राणी के साथ विश्वासघात करना, महापुरुष महानुभाव योगियों का तिरस्कार तथा अपकार रूपी पाप कर्म का भी इसी जन्म में फल मिलता है। शरीर से बीमार एवं क्षीण काय लोगों के लिये जीवनी शक्ति को बढ़ाने वाली क्रियाओं का आविष्कार हमारे दादा गुरुदेव ने किया है ये क्रियायें हैं–सर्वोत्तान, स्कन्ध चालन, पग चालन, नाभि चालन, जानुप्रसार, बाल मचलन, बाल–ध्यान, नाड़ी–संचालन एवं उत्प्रेक्षण। इन क्रियाओं को एक घण्टे तक किया जाता है।" समारोह के अन्तिम दिन सभी धर्माचार्यों तथा प्रबुद्ध नागरिकों तथा अनेक संगठनों के कार्यकर्ताओं ने ब्रह्मलीन दिग्विजय नाथ जी महाराज को भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की। इस प्रकार से योगाचार्य जी के देश के अनेक पीठों से पधारे पीठाधीश्वरों के मध्य उत्कृष्ट विद्वतापूर्ण भाषण एवं क्रियाओं का प्रदर्शन आश्रम की ख्याति एवं प्रतिष्ठा को बढ़ाने वाले रहे। इस प्रकार से गोरखनाथ मन्दिर गोरखपुर का यह कार्यक्रम बहुत ही आनन्ददायक व ज्ञानवर्द्धक रहा।

❋❋❋

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम्।।

अर्थात् इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि–ये सब इस 'काम' के अधिष्ठान अर्थात् रहने के स्थान कहे जाते हैं। यह काम इन आश्रयभूत इन्द्रियों के द्वारा ज्ञान को आच्छादित करके इस जीवात्मा को नाना प्रकार से मोहित किया जाता है।

योग की सात भूमिकाएँ

संसार के अनुभव से मुक्ति पाने और परमानन्द का अनुभव प्राप्त करने के योग नामक मार्ग की योगवासिष्ठ के अनुसार सात भूमिकाएँ हैं। जो जीव प्रयत्नशील होते हैं वे उन सबको थोड़े ही समय में पार कर लेते हैं और जो अधिक प्रयत्नशील नहीं होते उनको जन्म-जन्मान्तर लग जाते हैं। इन भूमिकाओं का वर्णन योगवासिष्ठ में कई स्थानों पर (३। ११८, ६/१। १२०, ६/१। १२६) आया है। एक स्थान पर उनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है। ज्ञान की सात भूमिकाएँ हैं—१. शुभेच्छा, २. विचारणा, ३. तनुमानसा, ४. सत्त्वापत्ति, ५. असंसक्ति, ६. पदार्थाभावनी और ७. तुर्यगा। इन सातों के अन्त में मुक्ति है जिसको प्राप्त कर लेने पर कोई दुःख नहीं रहता (३। ११८। ५)।

१. **शुभेच्छा**—संसार से वैराग्य हो जाने पर जब मनुष्य अपने को अज्ञानी समझकर शास्त्र और सज्जनों की संगति करके सत्य का ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा करता है, उस अवस्था का नाम शुभेच्छा है (३। ११८। ८)।

२. **विचारणा**—शास्त्र और सज्जनों के सम्पर्क से और वैराग्य और अभ्यास से सदाचार में जब प्रवृत्ति होती है, उस अवस्था का नाम विचारणा है (३। ११८। ९)।

३. **तनुमानसा**—शुभेच्छा और विचारणा के अभ्यास से इन्द्रियों के विषयों में असक्तता होने से मन के सूक्ष्म हो जाने का नाम तनुमानसा है (३। ११८। १०)।

४. **सत्त्वापत्ति**—पूर्व तीनों भूमिकाओं के अभ्यास से और चित्त के विषयों से पूर्णतया विरक्त हो जाने पर सत्य आत्मा में स्थित हो जाने का नाम सत्त्वापत्ति है (३। ११८। ११)।

५. **असंसक्ति**—चारों भूमिकाओं के परिपक्व हो जाने पर जब पूर्णतया मन में असंसक्ति उत्पन्न हो जाती है और आत्मतत्त्व में दृढ़ स्थिति प्राप्त हो जाती है तो उस अवस्था का नाम असंसक्ति है (३। ११८। १२)।

६. **पदार्थाभावनी**—पूर्व पाँचों भूमिकाओं के अभ्यास से और आत्मा में निश्चल स्थिति हो जाने से जब आन्तर और बाह्य वस्तुओं के अभाव की दृढ़ भावना हो जाती है उस स्थिति का नाम पदार्थाभावनी है। इसकी सिद्धि तब होती है जबकि परमात्मा की सत्ता और पदार्थों की असत्ता का बहुत समय तक यत्नपूर्वक अभ्यास किया जाए (३। ११८। १३–१४)।

७. **तुर्यगा**—पूर्व छः भूमिकाओं के अभ्यास से और पदार्थों का अनुभव न होने से अपने असली स्वरूप में निरन्तर स्थित रहने का नाम तुर्यगा है। जीवन्मुक्त लोगों को इस अवस्था का अनुभव होता है। विदेहमुक्ति इस अवस्था से परे है (३। ११८। १५)।

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Ag. 19/08-08
October, 2006

मीडिया पोस्ट

हृदय स्पर्शी सेवा

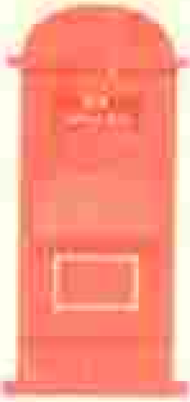

उत्पाद (ब्राण्ड) को बाजार में स्थापित करने के लिए एक अनोखी एवं प्रभावशाली योजना –

विभिन्न माध्यमों से विज्ञापन की सुविधा

1. डाक वस्तुओं पर प्रीपेड आवरण (स्थान भाड़ा) का विज्ञापन
2. मीटर फ्रैंकिंग पर स्थान का प्रायोजन (स्पोंसरशिप)
3. पेपर कवरों पर स्थान का प्रायोजन (स्पोंसरशिप) दर : रु. 1000 प्रति पैकेट प्रतिमाह प्रिंटिंग चार्ज रु. 500.00 प्रति पैकेट
4. डाकघर परिसर में होर्डिंग लगाकर विज्ञापन दर रु. 0.50 प्रति वर्ग फीट प्रति माह
5. डाकघर के अन्दर या बाहर ग्लोसाइन बोर्ड अथवा पोस्टर लगाकर विज्ञापन दर रु. 100/- प्रति वर्ग फुट प्रति माह
6. डाकघर के पतों पर स्वागत कीर्तिलेख की ड्राई लगाकर विज्ञापन दर रु0 100/- प्रति कार्ड प्रतिदिन कार्ड का मूल्य रु0 400/-
7. मेघदूत पोस्ट कार्ड की योजना से विज्ञापन अर्थात पोस्ट कार्ड के आधे भाग पर छपाई का विज्ञापन : दर रु. 2/- प्रति पोस्ट कार्ड। मेघदूत पोस्ट कार्ड का विक्रय मूल्य केवल 25 पैसे मात्र।

प्रेषक कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उत्कृष्ट कोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सैंयाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER

BOOK-POST

श्री/सुश्री

संस्थापक–योग योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डा. दारालाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सैंयाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर. एन. आई. रजि. नं. UPHIN/2004/14566 सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) दारालाल शर्मा